कुशवाहा 'कान्त'

आहुति



आहुति

S. P. B.–8.

"एक परिचारिका को इतना सम्मान न दें सम्राटदेव ! कि उसके पैर भूमि पर न पड़ डगमगा उठें !" तिष्यरक्षिता ने कहा ।

"तुम परिचारिका नहीं हो तिष्ये !..."

बोले सम्राट "तुम मेरे हृदय की उन्मादकारिणी ज्वाला हो—तुम मेरे यौवन की मधुर स्मृति हो–तुम मेरी अभिलाषाओं की साक्षात् तिमा हो...!"

"यह आपकी उदारता है सम्राटदेव !..."

"तिष्ये !...."

आगे के वाक्य, दो अधरों के संघर्षण में विलीन हो गये ।

"एक परिचारिक के साथ आपका यह सम्बन्ध अग्रमहिषी असन्धिमित्रा कों सह्य न होगा, शम्राटदेव !..." तिष्यरक्षिता ने कहा ।

"इसकी चिन्ता तुम न करो भद्रे !...."

—इसी उपन्यास में से



प्रकाशक

सरस्वती पाकेट बुक्स
सी २२/११, कबीर रोड · वाराणसी - १



मुद्रक

विद्या प्रकाश प्रेस
सी० के० ६५/३७६, बड़ी पियरी
वाराणसी

छः रुपये

आहुति

AHUTI By.: KUSHWAHA 'KANT'

6.00

आहुति

स्व. कुशवाहा 'कान्त'



१

यौवन का उभार, वक्षस्थल पर कम्पन बनकर छा गया था। नयनों की मदिरा, अधरों की ललिमा चुराकर रक्तिम हो उठी थी। कुन्तलपाश की काली-काली रेखायें, मणिमुक्तालसित वेणी का आलिंगन कर कटि-प्रदेश पर लहरा रही थीं। श्वेत-सुकोमल कण्ठ में पड़ा हुआ रत्नहार वक्षस्थल के उभार पर लोट रहा था। आकर्षक परिधान धारण किये खड़ी थी वह। नाम था उसका तिष्यरक्षिता। पाटलीपुत्र राज्यप्रसाद की प्रधान परिचारिका।

उसके मादक सौन्दर्य ने मगधाधिपति, प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्धन के हृदय पर अपनी छाप अंकित कर दी थी और सम्राट अशोक पचास वर्ष की ढलती अवस्था में भी उस सुन्दरी परिचारिका पर आसक्त हो गये थे।

कोमल हाथों में आसव-पात्र लिये हुए खड़ी थी तिष्यरक्षिता, और सम्राट अशोकवर्धन स्वर्णपट्टिका पर बैठे, एकटक तिष्यरक्षिता का यौवन निहार रहे थे।

"श्रीसम्राटदेव क्या आसव पान करेंगे?" पूछा उसने।

जैसे वीणा की मादक झंकार भर उठी, सम्राट के कानों में।

"नहीं!" गम्भीर वाणी में बोले वे—"एक बौद्ध के लिए यह त्याज्य वस्तु है, तिष्यरक्षिता!"

"मगर क्या सम्राटदेव की दृष्टि में सौदन्र्योपासना त्याज्य नहीं?" पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"अपने हृदय पर कभी किसी का अधिकार नहीं रहा है, तिष्ये!" सम्राट बोले—

"नहीं तो क्या मेरा हृदय, वृद्धावस्था में तुम जैसी युवती परिचारिका के प्रेमपाश में आबद्ध होता ?...."

सम्राट अशोक की अवस्था वास्तव में पचास के ऊपर थी, परन्तु अब भी उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट था, मुखाकृति पर तेज बरसता था और नेत्रों में लाल-लाल डोरे, अब भी अतीत यौवन के उन्माद की स्मृति दिला रहे थे। सम्राट ने सतृष्ण नेत्रों से तिष्यरक्षिता की ओर देखा और तिष्यरक्षिता ने अपनी नयन-प्रत्यंचा खींचकर कटाक्ष का एक घातक तीर छोड़ा।

सम्राट आहत हो उठे।

बोले—"तिष्ये ! आसवपात्र दीपदान के पास रख दो और इधर आकर मेरे वक्ष की ज्वाला शान्त करो..."

तिष्यरक्षिता के अधरों पर मधुर मुस्कान थिरक उठी। जब वह चली तो पाँव के नूपुर छम-छम बज उठे। ऐसा लगा, जैसे उस सौन्दर्यमयी युवती के पग-पग पर यौवन छितरा रहा हो।

तिष्यरक्षिता ने आसवपात्र रख दिया और यौवन-मद से झूमता हुआ अपना कोमल शरीर सँभाले वह सम्राट अशोकवर्धन के समक्ष आ खड़ी हुई।

सम्राट के आकुल हाथों ने उसे अपने उल्लसित अंग में समेट लिया। तिष्यरक्षिता पुत्तलिका की तरह सम्राट के वक्ष से लिपटी रही और अपने अधरों का मादक आसव सम्राट को पिलाती रही—

वृद्ध सम्राट, युवती परिचारिका का अधर-आसव पान कर मदमत्त हो उठे।

"देवी तिष्यरक्षिता..."अकस्मात् सम्राट ने मुँह खोला !

"एक परिचारिका को इतना अधिक सम्मान न दें सम्राटदेव ! कि उसके पैर भूमि पर न पड़, डगमगा उठें !" तिष्यरक्षिता ने कहा।

"तुम परिचारिका नहीं हो, तिष्ये !..." बोले सम्राट—"तुम मेरे हृदय की उन्मादकारिणी ज्वाला हो—तुम मेरे यौवन की मधुर

स्मृति हो—तुम मेरी अभिलाषाओं की साक्षात् प्रतिमा हो..."

"यह आपकी उदारता है, सम्राटदेव !..."

"तिष्ये !...." आगे के वाक्य, दो अधरों के संघर्षण में विलीन हो गये।

"एक परिचारिक के साथ आपका यह सम्बन्ध अग्रमहिषी असन्धिमित्रा को सह्य न होगा, सम्राटदेव !..." तिष्यरक्षिता ने कहा। उसके सुकोमल हाथ, रत्नमाला की तरह सम्राट के कण्ठ में पडे थे और यौवन–भार से उल्लसित उसका सुपुष्ट वक्ष, सम्राट के विशाल वक्ष का चुम्बन कर रहा था।

"इसकी चिन्ता न करो, भद्रे !..." सम्राट बोले—"मैं शीघ्र ही तुम्हें राजमहिषी का पद प्रदान करूँगा और साम्राज्य की सारा सुषमा तुम्हारे यौवन पर उत्सर्ग कर दूँगा..."

"स्वप्न की बातें करते हैं आप, सम्राटदेव !..."

"स्वप्न की बातें नहीं हैं ये, तिष्यरक्षिता !.... यह होकर रहेगा। तुमने अपना अकृत्रिम सौन्दर्य और मादक यौवन, जो मेरे जर्जर शरीर पर उत्सर्ग कर रखा है, मैं उस त्याग का समुचित पुरस्कार तुम्हें दूँगा !..."

"सम्राटदेव ! .."

हर्ष-विह्वल वाणी में बोली तिष्यरक्षिता।

आज उसे जीवन की एक महत्वपूर्ण महत्वकांक्षा के सफलीभूत होने का आभास मिला था। वह प्रसन्नता से विह्वल हो उठी।

वह न जाने कब से राजमहिषी का स्वप्न देखती आ रही थी और इसीलिए हृदय में सम्राट के प्रति कोई आकर्षण न रहते हुए भी, उसने अपनी यौवन-मदिरा सम्राट अशोक को पिलाई थी। उसके हृदय में सम्राट के प्रति तनिक भी प्रेम न था—थी तो केवल राजमहिषी बनने की प्रबल आकांक्षा !

उसने अपना सौन्दर्यपूर्ण यौवन वृद्ध सम्राट के समक्ष खोल कर रख दिया था, केवल अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए।

और आज, मादक आसव पीकर सम्राट अशोक उसे राजमहि
का पद देने को प्रस्तुत हो गये थे।

तिष्यरक्षिता निम्नवर्ग की थी। उसका हृदय कलुषित और म
महत्वाकांक्षी था। सौन्दर्य मधुर था, परन्तु अन्तराल विषाक्त था।

"तिष्यरक्षिता !...." सम्राट बोले—"तुमने कभी अपनी सेवा
का मुझसे कोई पुरस्कार नहीं माँगा ?..."

"सम्राटदेव की कृपा से मुझे किसी वस्तु का अभाव नहीं...."
तिष्यरक्षिता ने कहा—"अभाव है तो केवल एक वस्तु का..."

"वह क्या ?" सम्राट ने पूछा—"तुम सहर्ष मुझे अपने अभाव
की पूर्ति के लिए आज्ञा दे सकती हो..."

"एक परिचारिका, आर्यश्रेष्ठ को आज्ञा देने का साहस नहीं कर
सकती, सम्राटदेव !...." तिष्यरक्षिता बोली—"वह प्रार्थना कर
सकती है...अपना सब कुछ सम्राटदेव के चरणों में अर्पित कर, एक
तुच्छ भिक्षा माँग सकती है..."

"माँगो...क्या माँगना चाहती हो, तिष्ये ?...."

"..........."

"बोलो देवी तिष्यरक्षिता !" सम्राट ने पुनः कहा।

"साहस नहीं होता, सम्राटदेव !.. अदेय वस्तु की चाहना कर
बैठी हूँ, इसलिए भय से शरीर प्रकम्पित हो रहा है..."

"तुम निर्भय होकर कहो..." बोले सम्राट—"क्या चाहती हो ?"

"सम्राटदेव का निर्मल-प्रेम और चरण-कमलों की छाया..."

धीरे से कहा तिष्यरक्षिता ने।

"मेरा सब कुछ तुम्हारा है, तिष्यरक्षिता !...."

कहकर सम्राट ने तिष्यरक्षिता के अधरों का मधु-रस चुरा
लिया। तिष्यरक्षिता के उन्मादकारी यौवन ने सम्राट को अपने वश में
कर लिया था।

और यही तो चाहती थी तिष्यरक्षिता !

उसी समय द्वार पर से चुटकी बजने की ध्वनि सुनाई पड़ी।

सम्राट ने तिष्यरक्षिता को छोड़ दिया।

वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र सम्हालकर उठ खड़ी हुई।

प्रतिहारिणी अन्दर आई और झुककर सम्राट को सम्मान-प्रदर्शन करने के पश्चात् बोली—"आमात्य श्रेष्ठ प्रमुख द्वार पर उपस्थित हैं और इसी समय सम्राटदेव के दर्शन करना चाहते हैं..."

"उन्हें मेरी अनुमति का सन्देश दो!"

प्रातिहारिणी पुनः झुककर अभिवादन करने के पश्चात् बाहर चली गई।

"तिष्ये!..." सम्राट तिष्यरक्षिता से बोले—"आमात्य श्रेष्ठ आ रहे हैं। तुम पिछले द्वार से बाहर निकल जाओ..."

"जो आज्ञा!..." झुककर तिष्यरक्षिता ने सम्राट के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया और सुसज्जित प्रकोष्ठ से बाहर हो गई। थोड़ी ही देर बाद आमात्य श्रेष्ठ आ पहुँचे।

अनुभव तथा आयु ने उन्हें साठ की अवस्था तक पहुँचा दिया है, यह मुखाकृति से स्पष्ट प्रतिभासित होता था। वे मगध साम्राज्य के प्रधान आमात्य थे। आते ही उन्होंने सम्राट को अभिवादन किया।

"सम्राटदेव को मैंने असमय में कष्ट दिया है, अतः क्षमाप्रार्थी हूँ..."

"आमात्य श्रेष्ठ!..." बोले सम्राट—"क्या समाचार लाये हैं आप? कल होनेवाली बौद्ध-महासभा का सारा प्रबन्ध-कार्य समाप्त हो गया या नहीं?"

"हो, गया है, श्रीमान्!..." आमात्य श्रेष्ठ बोले—"लगभग एक सहस्र बौद्ध परिव्राजक एकत्र हो चुके हैं। चयन प्रदेश से च्यांगताई यू महाशय और ज्यापान देश से होंग शून्यान महोदय पधारे हैं! आगत विद्वानों को आदरसहित अतिथि-प्रकोष्ठ में ठहराया गया है..."

"तब तो कल की महासभा अवश्य सफल होगी..."

"सम्राटदेव की कृपा से यह महासभा बौद्धधर्म के इतिहास में

अद्वितीय होगी..." आमात्य श्रेष्ठ ने कहा—"पंचनद प्रान्त
सम्राट कुमार महेन्द्र और सम्राटकुमारी संघमित्रा भी पधारे हैं
मौर्यकुल भूषण, धर्मविवर्धन युवराज कुणालदेव भी उज्जयिनी से
गये हैं..." महेन्द्र और कुणाल, सम्राट अशोक के पुत्र थे और
मित्रा थी उनकी पुत्री।

सम्राटकुमार महेन्द्र और सम्राटकुमारी संघमित्रा सम्राट
आज्ञा से पंचनद प्रान्त में बौद्धधर्म का प्रचार करने गये थे
युवराज कुणाल उज्जयिनी प्रदेश के प्रजापति थे। ये लोग बौद्ध
सभा में सम्मिलित होने के लिए पाटलीपुत्र आये थे।

"आमात्य श्रेष्ठ !"

"आज्ञा सम्राटदेव ?"

"महापरिचारिका को आदेश दीजिये कि वह महेन्द्र और
मित्रा के लिए परिचारक और परिचारिकाओं की उचित
कर दे..."

"जो आज्ञा, सम्राटदेव !"

"और युवराज कुणाल की परिचर्या के लिए परिचारिका-श्र
तिष्यरक्षिता को भेजने का प्रबन्ध कीजिए....युवराज को किसी
का कष्ट न होने पाये..."

"......."

अभिवादन कर चले गये आमात्य श्रेष्ठ।

थोड़ी देर बाद प्रतिहारी ने पुनः प्रवेश किया।

"प्रमुख द्वार पर सम्राटकुमार महेन्द्र, सम्राटकुमारी
और मौर्यकुल भूषण, धर्मविवर्धन युवराज कुणालदेव उपस्थित हैं..

"आज्ञा है उन्हें..." हर्षित होकर सम्राट बोले। अपनी
को कई वर्ष बाद देखने के अत्यन्त लालायित थे, सम्राट अशोकवर्धन
महेन्द्र, संघमित्रा और युवराज कुणाल आये। तीनों ने सम्राट
अभिवादन किया।

सम्राट ने उठकर तीनों को क्रमशः हृदय से लगाया ।

"कैसे रहे तुम लोग ?..."

"आपकी कृपा से सकुशल रहे हमलोग, पिता जी !..." कुणाल उत्तर दिया ।

"युवराज कुणाल !..." सम्राट बोले—"उज्जयिनी का क्या माचार है ? राज्य-संचालन में कोई बाधा तो नहीं उपस्थित होती ?"

"जी नहीं पिताजी ?..." युवराज कुणाल ने कहा—"प्रजा में ख शान्ति है ।"

युवराज कुणाल की अवस्था बाईस वर्ष की थी । हृष्ट-पुष्ठ शरीर र मणिमुक्तालसित मूल्यवान वस्त्र, उनके सौन्दर्य को द्विगुणित कर हे थे ।

"कांचन और सम्प्रति तो सकुशल हैं ? ..." पूछा सम्राट ने ।

कांचनमाला थी कुणाल की पत्नी और सम्प्रति था उनका पुत्र !

"सब सकुशल और स्वस्थ हैं, सम्राटदेव !..." युवराज कुणाल नतमस्तक होकर उत्तर दिया ।

"उन्हें क्यों नहीं लाए ?"

"वहाँ का कार्य भी तो देखना था, पिताजी ! कैसे ला सकता ा उन्हें ...." कुणाल बोले ।

सम्राट अब महेन्द्र और संघमित्रा की ओर अभिमुख हुए ।

"तुम लोगों को कोई कष्ट तो नहीं ?" पूछा सम्राट ने । "नहीं पिताजी !"

"पंचनद प्रान्त में बौद्ध-धर्म को आशातीत सफलता मिली है, पिताजी !" संघमित्रा बोली ।

"यह सब तुम दोनों के अध्यवसाय का प्रतिफल है...." सम्राट ने कहा—"अब तुम लोग जाकर विश्राम करो ।" तीनों, सम्राट को अभिवादन कर अपने-अपने प्रकोष्ठ की ओर चले गये । युवराज कुणाल जब अपने प्रकोष्ठ में आये तो आश्चर्यचकित से खड़े रह गये ।

प्रकोष्ठ में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि उनके समक्ष एक सौन्द
प्रतिमा खड़ी है। देखते ही रह गये कुणाल, उस युवती परिचारि
को। "तिष्यरक्षिता, तुम ?..." युवराज कुणाल विस्मयपूर्ण स्व
में बोले !

वे आज कई साल के बाद पाटलीपुत्र आये थे। तिष्यरक्षि
के मादक सौन्दर्य को देखकर उन्हें महान आश्चर्य हो रहा थ
क्योंकि पिछली बार जब उन्होंने उसे देखा था तो मुकुलित कालिकाम
थी। और अब उसने प्रस्फुटित पुष्प का रूप का धारण कर लिया थ
यौवन की मादकता अंग-अंग में लहरा उठी थी। बड़े-बड़े मृगवाश
जैसे नयनों की श्यामलता पर्याप्त गहरा रंग ले चुकी थी। अधरों
लालिमा पर उन्मादकारी मुस्कान थिरक रही थी।

आश्चर्यचकित से खड़े रहे युवराज कुणाल ।

तिष्यरक्षिता भी युवराज का सौंदर्य देखकर विस्मृत-सी हो उठ
थी। उसने कभी युवराज को इतना सुन्दर न देखा था। तब, ज
पिछली बार उसने युवराज को देखा था तो उसके नयनों में सौंद
की परिभाषा पढ़ने की शक्ति न थी। और आज वह सुन्दरी परि
चारिका, यौवन के द्वार पर खड़ी होकर निर्निमेष दृष्टि से युवराज क
सुगठित शरीर और उनका अनुपम सौंदर्य देख रही थी।

"श्रीयुवराज देव को मुझे यहाँ देखकर महान आश्चर्य हुअ
होगा ? ..."बोली तिष्यरक्षिता—"आज कई वर्षों के पश्चात् श्रीयुव
राज देव का आगमन सुनकर दर्शन करने की लालसा प्रबल हो उठी
श्रीयुवराजदेव मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे। मैंने सोचा, श्रीयुव
राज देव के साथ युवराज्ञी काँचनमाला देवी पधारी होंगी, अत
युवराज देव को एक परिचारिका की आवश्यकता होगी..."

"ओह !..." युवराज बोले—"तुम तो अब बहुत बड़ी और
आकर्षक हो गई हो, तिष्ये !"

"मानव शरीर नाशवान है, देव !...यह ज्यों-ज्यों बड़ा होता है

ों-त्यों विनाश की ओर सरकता जाता है, मैं भी विनाश की ओर रकती जा रही हूँ..."

तिष्यरक्षिता की आध्यात्मिक बात सुनकर युवराज कुणाल हँस ड़े। उनकी वह हँसी तिष्यरक्षिता के हृदय में मादक तीर बनकर विश कर गई।

तिष्यरक्षिता ने युवराज के सुगठित शरीर पर के मूल्यवान वस्त्र तारे और उनसे स्वर्ण-पट्टिका पर बैठ जाने का निवेदन किया।

"क्या श्रीयुवराजदेव आसव-पान करेंगे ?..." पूछा तिष्यरक्षिता ।

"नहीं मुझे विश्राम की आवश्यकता है..." बोले युवराज। और तिष्यरक्षिता झुककर अभिवादन करने के पश्चात् प्रकोष्ठ से बाहर हो ई।

२

राजनगर पाटलीपुत्र के सीमावर्ती विस्तृत मैदान में, बौद्ध-महासभा का सुविशाल मण्डप निर्मित किया गया था। सभा-मण्डप का सारा प्रबन्ध आमात्यश्रेष्ठ के आधीन था।

आज बौद्ध महासभा का द्वितीय अधिवेशन* होने जा रहा था ! सारा मण्डप आकर्षक बन्दनवार और विविध फूल पत्तियों से सजाया गया था। स्वयं आमात्य श्रेष्ठ व्यस्त होकर इधर-उधर घूम रहे थे। महाप्रतिहार, सभा-मण्डप के प्रवेश द्वार पर खड़े आगत विद्वानों तथा भिक्षुकों का उचित स्वागत कर, उन्हें यथास्थान आसीन करा रहे थे। महासभा में सम्मिलित होने वाले सभी विद्वान् परिव्राजक, आचार्य तथा भिक्षुकगण सभा-मण्डप में पधार चुके थे। चारो ओर नीरवता व्याप्त थी।

---

* इतिहासज्ञों के मत से यह सभा ई० पू० सन् २४३ में हुई थी।

चयन, ज्यापान, यरिपु, रौष, आष्ट्रिय आदि विदेशों से बौद्ध विद्वान पधारे थे।

तक्षशिला, वाराणसेय, उज्जयिनी, कश्मीर, सिंहल, कलिंग आदि प्रान्तों से भी भिक्षुप्रवर आचार्यों का आगमन हुआ सब यथायोग्य आसनों पर आसीन थे।

सभापति के उच्चासन पर विराजमान थे कुक्कुटाराम संघस्थविर परिव्राजकाचार्य भिक्षुश्रेष्ठ महात्मा यश !

प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्धन, अग्रमहिषी असन्धिमित्र और विवर्धन युवराज कुणाल अब तक सभा में नहीं पधारे थे। उन्हीं प्रतिक्षा की जा रही थी।

थोड़ी देर बाद एक सुसज्जित रथ सभामण्डप के प्रवेश-द्वार आ खड़ा हुआ और उसपर से सम्राट अशोक, अग्रमहिषी तथा कुणाल उतरे।

महाप्रतिहार ने भूमि तक झुककर सादर अभिवादन किया आमात्यश्रेष्ठ ने आगे बढ़कर सम्राट आदि का स्वागत किया।

सम्राट स्वर्ण सिंहासन पर असीन हुए।

आज सम्राट, अग्रमहिषी तथा युवराज आदि ने मूल्यवान वस्त्र धारण किया हुआ था।

महासभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। सभी प्रदेशों से पधारे विद्वानों के भाषण हुए बौद्ध-धर्म की उन्नति के लिए सभी ने अपने विचार व्यक्त किये। लगभग सात घण्टे तक भाषणादि रहे। इसके पश्चात् सम्राट अशोक अपने स्वर्णासन से उठ खड़े हुए सभा में निस्तब्धता छा गई। गम्भीर वाणी में सम्राट बोले—' विद्वानों ! आप लोगों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जो आपने पधारने का कष्ट उठाया।
आप सज्जनों ने बौद्ध-धर्म की उन्नति के लिए लाभप्रद उपस्थित किये हैं। मैं अवश्य उनपर आचरण करके अपने को समझूँगा..." थोड़ा-सा रुके सम्राट अशोक। एक बार स्थिर

उन्होंनें उपस्थित विद्वत्-मण्डली की ओर देखा—

पुनः बोले—

"धर्मानुराग, आत्म-संयम, निष्ठा एवं उत्साह के बिना किसी उद्देश्य की पूर्ति दुर्लभ है। मैं बौद्धधर्म की उन्नति के लिए यथाशक्ति करूँगा। एक बार मैं शस्यश्यामला भारत की भूमि पर बौद्ध फहराते देखना चाहता हूँ...आज से मैं राष्ट्र के शासन का बदल दूँगा...शासन का स्वरूप धार्मिक होगा...राष्ट्रीय तथा संस्थायें एक हो जायेंगी...राज्य-कर्मचारी धर्मोपदेशकों का भी करेंगे...शासन का कर्त्तव्य न केवल देश में शान्ति स्थापित होगा, वरन् बौद्धधर्म का प्रचार भी शासन-परिषद् द्वारा ।...और प्रत्येक प्रान्त मे धार्मिक गुरुओं की नियुक्ति करूँगा, जो काम का निरीक्षण करेंगे कि प्रजा पर बौद्धधर्म का कैसा प्रभाव रहा है....लोग हिंसा तो नहीं करते?"

सम्राट ने रुककर आमात्यश्रेष्ठ की ओर देखा।

"आमात्यश्रेष्ठ!"

"आज्ञा सम्राटदेव?" आमात्यश्रेष्ठ ने खड़े होकर सम्मानपूर्वक कहा।

'आप शीघ्र ही साम्राज्य के प्रत्येक प्रान्त मे धार्मिक गुरुओं की नियुक्ति का प्रबन्ध करें..."

"जो आज्ञा सम्राटदेव!...."

सम्राट दूसरी ओर अभिमुख हुए—

"महाबलाधिकृत!..."

महाबलाधिकृत उठकर खड़े हो गये। सादर अभिवादन करने के पश्चात् बोले—"आज्ञा श्रीमान्!..."

"धर्म-प्रचार के लिए जितने मनुष्यों की आवश्यकता हो, आप आमात्यश्रेष्ठ से सम्मति लेकर प्रबन्ध करें और महाभण्डाराधिकृत से आवश्यक वस्तुयें लेकर तथा कोषाध्यक्ष से उचित द्रव्य प्राप्त कर, शीघ्र से शीघ्र धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ कर दें।"

"जो आज्ञा..."

"कुमार महेन्द्र और कुमारी संघमित्रा ?" सम्राट बोले।

महेन्द्र और संघमित्रा उठकर खड़े हो गये।

"तुम लोग सिंहलद्वीप में जाकर प्रचार करोगे...तुम्हें स्वीकार है ?"

"सम्राटदेव की आज्ञा शिरोधार्य है।"

"युवराज कुणाल !" सम्राट युवराज की ओर आकर्षित हुए। युवराज उठकर खड़े हो गये। सम्राट को सम्मान-प्रदर्शन किया।

"तुम उज्जयिनी प्रान्त के उप-प्रजापति रहकर धर्म-प्रचार करोगे...." बोले सम्राट अशोक।

"जो आज्ञा सम्राटदेव !"

तत्पश्चात् महासभा विसर्जित हुई। सब लोग यथास्थान पधारे।

युवराज कुणाल, सम्राट अशोक और राजमहिषी असंधिमित्रा रथारूढ़ होकर राजप्रसाद में लौट आये।

"सम्राटदेव ने धर्मोन्नति के लिए अत्यन्त सराहनीय घोषणा की है..." अग्रमहिषी ने कहा।

"अब बौद्धधर्म संसार के सब धर्मों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेगा, माता !" युवराज कुणाल बोले—"हम इसकी उन्नति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहेंगे...."

यद्यपि युवराज कुणाल, सम्राट अशोक की स्वर्गीय राजमहिषी पद्मवती के पुत्र थे, तथापि विमाता असन्धिमित्रा और उनमें माता-पुत्र जैसा ही स्नेह था।

"उज्जयिनी को कब प्रस्थान करोगे, युवराज ?" राजमहिषी ने पूछा।

"कल प्रातःकाल, माताजी !..." युवराज बोले—"कुछ दिनों तक आप लोगों की और सेवा करने की लालसा थी, परन्तु मेरे शीघ्र न जाने से शासन-कार्य में अव्यवस्था की सम्भावना है..."

"ठीक कहते हो, युवराज!...." सम्राट ने कहा—"शासन कार्य ामात्यों पर ही निर्भर रहने से प्रजा की सुख-सुविधा का प्रबन्ध उचित रूप से नहीं हो सकता।"

"तभी तो तक्षशिला से सदैव विद्रोहाग्नि भड़कने के समाचार ा रहे हैं..." अग्रमहिषी ने कहा।

सम्राट तथा राजमहिषी के चरण छूकर युवराज अपने प्रकोष्ठ ें आये।

प्रवेश द्वार पर खड़ी थी तिष्यरक्षिता।

नयनों में अगम प्यास, वक्षस्थल पर वैकल्यपूर्ण कम्पन तथा शरीर र असाधारण यौवन-भार लिये।

मदिर मुस्कान से उसने युवराज का स्वागत किया।

युवराज का वस्त्र-परिवर्तन करते हुए वह बोली—"सुनती हूँ, ाज की सभा अत्यन्त सफल रही, युवराजदेव!"

"हाँ!" युवराज ने संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

"युवराजदेव किन विचारों में तल्लीन हो गये....?" पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"कुछ नहीं..." पुनः वही छोटा-सा उत्तर मिला।

"क्या युवराज के हृदय में कांचनमाला की स्मृति उभर ाई है?"

मुस्कुरा उठी तिष्यरक्षिता। मादक नयनों से उसने देखा युवराज ी ओर, परन्तु युवराज दूसरी ओर देख रहे थे।

बोले—"हाँ तिष्यरक्षिता! तुम्हारा कथन सत्य है, कांचन हाँ सम्प्रति के साथ अकेली है। मेरे बिना उसका हृदय व्यथित ोगा...."

"तो क्या युवराजदेव शीघ्र ही उज्जयिनी प्रस्थान करेंगे?"

"हाँ कल प्रातःकाल ही!" युवराज बोले।

"ओह!"

अव्यवस्थित स्वर में बोली तिष्यरक्षिता। उसकी मुकुलित मुखश्री

म्लान पड़ गई। मुखाकृति पर चिन्ता की कालिमा छा गई।

"हमारी तुमने बहुत सेवा की है, तिष्यरक्षिता।..." युवराज बोले—"हम तुमपर प्रसन्न हैं..."

"हम लोगों की ममता तो युवराजदेव ने विस्मृत कर दिया है..." करुण-स्वर में बोली तिष्यरक्षिता।

"तुम्हें दुःख होता है, तिष्ये?"

"युवराजदेव जैसे सहृदय व्यक्ति का वियोग किसे सह्य होगा!...."

"विवश हूँ, तिष्यरक्षिता! मेरा जाना अनिवार्य है...."

और दूसरे दिन प्रातःकाल युवराज कुणाल उज्जयिनी चले गये, तिष्यरक्षिता के हृदय में विकल स्मृति छोड़कर।

३

दो वर्ष बाद—

अग्रमहिषी असन्धिमित्रा का शयन-प्रकोष्ठ!

प्रवेश द्वार पर परिचारिकाओं की भीड़!

चिन्तातुर खड़े हुए अमात्यश्रेष्ठ!

प्रकोष्ठ के भीतर से एक परिचारिका बाहर आई और आमात्यश्रेष्ठ को अभिवादन कर बोली—"आप अन्तःपुर में पधारें। राजमहिषी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं, परन्तु परिचारिका श्रेष्ठी तिष्यरक्षिता देवी का अनुरोध है कि राजमहिषी की दशा चिन्ताजनक है और विषगशिरोमणि त्र्यम्बकशास्त्री ने उनके लिए पूर्ण विश्राम की आवश्यकता बताई है, ऐसी दशा में श्रीमान् उन्हें मात्र देख भर सकते हैं...अधिक वार्तालाप से उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की संभावना है।"

धीरे से आमात्याश्रेष्ठ प्रकोष्ठ के भीतर आये।

देखा, फूल-सा सुकुकार शरीर सूखकर काँटा हो गया था। राज-हिषी असंधिमित्रा की अवस्था वास्तव में चिन्ताजनक थो।

आमात्यश्रेष्ठ को देखकर अग्रमहिषी ने उठकर बैठने का प्रयत्न या, परन्तु असफल रही। आमात्यश्रेष्ठ ने उन्हें सादर अभिवादन र उनके शिथिल शरीर को सहारा दिया।

"आमात्यश्रेष्ठ! आ गये आप?" टूटते स्वर में बोली राज-हिषी।

"आज्ञा साम्राज्ञी!..."

"परन्तु अब तो बहुत विलम्ब हो गया है, आमात्यश्रेष्ठ!..." ब आप मेरी क्या सहायता कर सकेंगे!......"

"धैर्य रखें, राजमहिषी!..." आमात्यश्रेष्ठ बोले—"आप शीघ्र स्वस्थ हो जायँगी..."

"अब तो दीप-शिखा क्षीण हो चली है, आमात्यश्रेष्ठ! अब ान्त्वना क्षीणता को उद्दीप्त नहीं कर सकती..."

अग्रमहिषी बोलते-बोलते हाँफने लगी।

"अधिक वार्तालाप न करें, अग्रमहिषी!...." आमात्यश्रेष्ठ ने ार्थना की।

"इतने दिन तक तो चुप रही, आमात्यश्रेष्ठ!...अब क्या अन्त मय में भी हृदय की ज्वाला शान्त न करूँ?...."

"आपको क्या व्यथा है, राजमहिषी?...." आमात्यश्रेष्ठ बोले—वैद्य प्रवर भी आपके रोग का निदान नहीं कर सके—अवश्य आपको ोई आन्तरिक वेदना है, साम्राज्ञी!"

"सब कुछ बताऊँगी आपसे..." अग्रमहिषी बोली—"इसीलिए ी आपको बुलाया है। आप आमात्यश्रेष्ठ हैं। साम्राज्य का सारा ार आप पर है। आशा है आप मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनेंगे, और ेरी मृत्यु के पश्चात् उन बातों का समुचित निराकरण करेंगे ताकि ाम्राज्य का कोई अनिष्ट न हो...."

"मैं आपकी आज्ञा सुनने को अत्यन्त उत्सुक हूँ, साम्राज्ञी!...."

"आपको ज्ञात होगा कि दो वर्ष पहले, जब कि राजनगर पुत्र में बौद्ध महासभा हुई थी, उसके कुछ ही दिनों बाद से स्वास्थ्य गिरने लगा...."

"मुझे स्मरण है साम्राज्ञी ! आपका यह मानसिक वर्षों से आपको क्षीण और शिथिल बना रहा है...." श्रेष्ठ बोले ।

"क्या आप इसका कारण जानते हैं ?..."

"..........."

"क्या आप मेरे घुल-घुलकर मरने का इतिहास जानते हैं ?"

"..........."

"क्या आप मेरे सुहाग-सिन्दूर लुटने की कहानी जानते हैं ?"

चौंक पड़े आमात्यश्रेष्ठ !

"मुझे जानने की उत्सुकता है !..." वे बोले ।

"तो सुनिये !..." थोड़ा रुकी राजमहिषी, पुनः धीरे से मेरे रोग का, मेरी मानसिक अशान्ति का कारण..."

आश्चर्यचकित मुद्रा से उन्होंने राजमहिषी को देखा । ने कहा--

"सम्राटदेव का परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिता से घनिष्ठ ही मेरे रोग का कारण है .."

चौंककर आमात्यश्रेष्ठ उठ खड़े हुए ।

"आप क्या कहती हैं, राजमहिषी ?..." बोले वे--" श्री सम्राट अशोक ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकते, साम्राज्ञी आपको भ्रम हुआ होगा ।"

"आमात्यश्रेष्ठ !..." हताश किन्तु तीव्र स्वर में बोलीं महिषी--"इस बात पर कभी कोई विश्वास नहीं करेगा, यह मैं ही जानती थी...."

"आप धीरे-धीरे वार्तालाप करें, साम्राज्ञी ! हानि की है..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा ।

परन्तु राजमहिषी के स्वर में कम्पन के साथ-साथ तीव्रता आ थी। "इसीलिए अब तक मैंने यह बात अपने अन्तराल में ही रखी थी..."

"साम्राज्ञी !" चिन्तातुर स्वर में बोले आमात्यश्रेष्ठ।

"मगर सुनिए, महामात्य ! यह घटना मेरे इन्हीं नेत्रों के समक्ष टित हुई है..."

'सब कुछ देखकर मेरे हृदय में ज्वाला धधक उठी थी..."

"कृपया शान्त रहिये, अग्रमहिषी !"

"और आज उस ज्वाला ने मेरे तन का रक्त, हृदय की सुख-न्ति और नयनों की नींद—सब कुछ हरण कर ली है..."

चिल्ला-सी पड़ीं अग्रमहिषी।

और दूसरे ही क्षण उनका चेतनाहीन शरीर पलंग पर लुढ़क ड़ा।

आमात्यश्रेष्ठ ने आगे बढ़कर उनकी नाड़ी की परीक्षा की। चमुच वे मूर्छित हो गई थीं। उन्हें प्रबल मानसिक आघात पहुँचा ा।

परिचारिकाएँ दौड़ पड़ीं।

भिषगशिरोमणि त्र्यम्बक शास्त्री भी आये। परन्तु राजमहिषी की तना न लौटी।

दूसरे दिन—

राजमहिषी की अवस्था अधिक चिन्ताजनक हो गई। उनमें तना के लक्षण लुप्त होते जा रहे थे। श्वांस-प्रश्वांस तीव्र वेग से लने लगी थी। सम्राट अशोक चिन्ताग्रस्त अवस्था में प्रकोष्ठ में इधर उधर व्यग्रतापूर्वक टहल रहे थे। आमात्यश्रेष्ठ चिन्ताकुल खड़े —एकदम निस्तब्ध !

टहलते-टहलते सम्राट रुक गये।

आमात्यश्रेष्ठ के सामने आकर बोले—"आमात्यश्रेष्ठ !"

"आज्ञा सम्राटदेव !..."

"क्या संसार की कोई भी शक्ति इस अचैतन्य शरीर में चै
का संचार नहीं कर सकती ?"

आमात्य श्रेष्ठ ने देखा कि कहते-कहते सम्राट की वृद्ध आ
भर आई हैं।

"दो वर्षों से अग्रमहिषी रुग्ण हैं..." सम्राट बोले—"और अ
उन्होंने प्रस्थान की तैयारी भी कर ली है, परन्तु यह सब हुआ कै
आमात्यश्रेष्ठ ? साम्राज्ञी की रुग्णता का कारण क्या है ?...."

"..........."

आमात्यश्रेष्ठ सब कुछ जानते हुए भी चुप रहे। कुछ न बोले।

कैसे बताते वे सम्राट अशोक को, कि राजमहिषी की मानसि
वेदना ने उन्हें जर्जर कर डाला और उस वेदना के जनक
आप हैं ?

कैसे बताते वे कि एक स्त्री, अपने नेत्रों से अपना सुहाग लुट
नहीं देख सकती ?

"सम्राटदेव !" आमात्यश्रेष्ठ ने चिन्तित स्वर में कहा।

"निवेदन कीजिए, आमात्यश्रेष्ठ !"

"दीपक अब निर्वाण के समीप है..." आमात्यश्रेष्ठ बोले-
"राजमहिषी युवराज कुणालदेव को बहुत चाहती थीं। आज्ञा हो
उन्हें राजमहिषी की रुग्णता का समाचार प्रेषित कर दिया जाय..

"आवश्यकता नहीं..."

कहकर सम्राट पुनः टहलने लगे।

"परन्तु सम्राटदेव !...."

"मैं एकान्त चाहता हूँ..." सम्राट बोले—"व्यथित अ
विचलित हो रहा हूँ मैं..."

आमात्यश्रेष्ठ प्रकोष्ठ के बाहर चले गये।

सम्राट आकर राजमहिषी के बगल में बैठ गये। चेतनाही
शरीर को गोद में ले लिया। नयनों से आँसुओं की अविरल धा
बह चली।

बड़ी देर तक वे इसी प्रकार बैठे रहे, परन्तु मृत्यु की भीषण ज्वाला सम्राट के आँसुओं से न बुझ सकी।

अग्रमहिषी की साँस तीव्रगति से चलने लगी। निर्वाण का समय निकट आ गया था।

सम्राट ने आगे बढ़कर घण्टे पर मुंगरी मारी। टन्न की आवाज से मृत्यु की छाया भी काँप उठी। परिचारिकाएँ दौड़ पड़ी।

"भिषगशिरोमणि त्र्यम्बक शास्त्री को बुलाओ...और आमात्यश्रेष्ठ को भी..." सम्राट ने आज्ञा दी। परन्तु त्र्यम्बक के आते-आते, दीपक की क्षीण ज्योति पर अन्धकार का आवरण छा गया था। दीपशिखा एक बार जलकर सदैव के लिये बुझ गई। राजमहिषी ने संसार से नाता तोड़ लिया था। सम्राट अशोक आँखों से आँसू पोंछते हुये प्रकोष्ठ के बाहर चले गये। आमात्यश्रेष्ट रो पड़े, बालकों की तरह—क्योंकि सम्राज्ञी की असामयिक मृत्यु का कारण वे जान गये थे।

४

उज्जयिनी का सुविशाल राजपथ—

और उसपर दौड़ता हुआ एक सुसज्जित रथ !

उज्जयिनी-निवासी हर्षनाद कर रहे थे—

"उपप्रजापति, धर्मं विवर्धन कुणालदेव की जय !..."

वह युवराज कुणाल का रथ था। आज वे अपनी प्रजा के सुख-दुःख का निरीक्षण करने निकले थे।

लोग उनका प्रशस्त ललाट तथा अपूर्व सौन्दर्य देखकर मुग्ध थे। चारो ओर से पुष्पमालायें एवं पुष्प युवराज के रथ पर गिर रहे थे।

* इतिहासज्ञों का मत है कि राजमहिषी की मृत्यु, बौद्ध महासभा के दो वर्ष पश्चात् हुई थी।

युवराज कुणाल उज्जयिनी के उपप्रजापति थे। अपने सुयोग्य से उन्होंने प्रजा का मन मुग्ध कर लिया था।

रथ आकर प्रसाद के प्रमुख द्वार पर खड़ा हो गया। ने अभिवादन कर द्वार का विशाल फाटक खोल दिया।

रथ भीतर प्रविष्ट हुआ।

मनोरम उद्यान के मध्य युवराज कुणाल का सुसज्जित स्थिति था।

भीतर पहुँचकर युवराज रथ पर से उतर पड़े। पुत्र दौड़ता हुआ आकर उनके पैरों से लिपट गया। युवराज ने उसे में उठाकर उसके कोमल कपोलों पर प्यार अंकित कर दिया तत्पश्चात उसे लेकर अपने शयन-प्रकोष्ठ में आये।

उनकी धर्मपत्नी कांचनमाला स्वर्ण-पट्टिका पर आसीन हो यौवन का प्रतिबिम्ब, सामने टँगे दर्पण में देख रही थीं।

कांचन की अवस्था बीस के लगभग थी। यौवन की आभा अंग से फूट पड़ रही थी। युवराज कुणाल के हृद्-मन्दिर की थी वह।

प्रकोष्ठ में पहुँचकर युवराज ने सम्प्रति को गोद से उतार दिया सम्प्रति बालक्रीड़ा करता हुआ बाहर चला गया।

युवराज को आया देख कांचन हर्षित हो उठी। मादक अंगों मधुर चंचलता भर गई।

युवराज के विशाल बाहुओं ने कांचन के कोमल शरीर को कर लिया।

"आ गये आप ?...."

इसके आगे की बात कांचन के मुँह में ही रह गई।

युवराज के तृषित अधर युग-युग की अगम प्यास लिये, के अरुण अधरों पर जा बैठे।

"हाँ देवी कांचनमाला ! आ गया..." युवराज बोले।

कांचन विभोर हो युवराज के शरीर से लगी रही।

"नगर का निरीक्षण समाप्त हो गया ?..."

पूछा कांचन ने, अपने नयनों की मदिरा युवराज के नयनों में ढलते हुए। "हाँ देवी, शकुशल समाप्त हो गया।..." युवराज ने उत्तर दिया।

"परन्तु निरीक्षण बहुत शीघ्र क्यों समाप्त हो गया, देव ?..."

"प्रजा पूर्णतया सुखी है, देवि !...बौद्धधर्म का यथेष्ट प्रचार हो रहा है...." मृगवाशक जैसे आकर्षक नेत्रों से एकटक कांचन का सौन्दर्यपान करते हुए युवराज ने कहा।

"एक बात निवेदन करूँ, देव ?"

अधरों पर मुस्कान की प्रभा विखेर कर पूछा कांचन ने।

"कहो देवि !...क्या कहती हो ?"

"देव के नेत्र बहुत घातक हैं !...."

"कैसे ?" युवराज ने कांचन को कसकर अपने शरीर से आबद्ध करते हुए पूछा।

"कोमल हृदयों पर आघात करते हैं...." छलक पड़ा आसव कांचन के मुख से। मदमत्त हो उठे युवराज। प्रकोष्ठ की निर्जीव दीवारें भी चुम्बन की ध्वनियाँ सुन-सुनकर सिहर उठीं।

"एक बात कहूँ !...." युवराज बोले।

"कहिये न !" कटाक्षपूर्ण भंगिमा से बोली कांचन।

"देवी के नयन-कटोरों में आसव है।"

प्रेमसिक्त स्वर में युवराज ने कहा।

"क्या देव नयनासव पान करने को लालायित हैं ?"

"अवश्य देवि !..."

कांचन सजग हुई। उसे अपने नयनों की मदिरा अपने प्राण को ढालनी थी। वह अपना कर्त्तव्य भली प्रकार जानती थी।

उसने अपना मनोरम कटिप्रदेश मरोड़कर एक घातक अंगड़ाई ली, जिससे वक्ष-सरोवर पर के दो यौन-कमल खिल उठे।

अपने मादक सौन्दर्य की सारी मधुरता, सारी सुषमा अपने नयन-

कटोरों में भरकर उसने युवराज कुणाल की ओर देखा।

नयन-सागर के दो जाज्वल्यमान मोती, इधर से उधर दो न लहराये। वह मूक सन्देश था—

नेत्रों की भाषा ने युवराज के हृदय को, कांचनमाला के आ समर्पण की बात कह दी थी। दम्पति प्रणयलीला में विभोर हो गये

उसी दिन सायंकाल !

युवराज कुणाल और कांचनमाला अपने प्रकोष्ठ में बैठे सम्प्रति की बालक्रीड़ा देख रहे थे। उसी समय प्रतिहारी ने आ निवेदन किया—"राजनगर पाटलिपुत्र से श्री सम्राटदेव का सन्दे वाहक आया है। श्रीयुवराज देव के लिए कोई आवश्यक पत्र लाया है..."

"उसे आने की अनुमति है..."

प्रतिहारी बाहर चला गया।

सन्देश-वाहक भीतर प्रविष्ट हुआ।

उसने झुक कर युवराज तथा युवराज्ञी को क्रमशः अभिवाद किया।

"क्या समाचार है ? पाटलीपुत्र का ?..." युवराज ने पूछा- "कोई सन्देश लाये हो तुम ?..."

युवराज ने देखा कि सन्देश-वाहक की आकृति गम्भीर है मुखाकृति पर करुणा झलक रही है।

"युवराजदेव ?...समाचार अत्यन्त दुःखपूर्ण है..."

कहते हुए पत्र-वाहक ने भोजपत्र पर लिखा हुआ एक पत्र युवरा के हाथ पर रख दिया।

युवराज का हाथ न जाने क्यों काँप उठा वह पत्र लेते हुए।

युवराज शीघ्रतापूर्वक पढ़ने लगे।

यों लिखा था—

उज्जयिनी के प्रजापति युवराज कुणाल को प्रियदर्शी सम्रा अशोकवर्धन का आशीर्वाद ! तत्पश्चात् विदित हो कि अग्रमहिषि

असन्धिमित्रा का देहान्त विगत रविवार को हो गया है....तुम्हारा शीघ्र पाटलीपुत्र पहुँचना आवश्यक है।

पत्र पढ़कर युवराज के नेत्रों के समक्ष घनीभूत अन्धकार छा गया। कांचन ने भी वह पत्र पढ़ा। रोने लगी वह।

अग्रमहिषी असन्धिमित्रा की मृत्यु वास्तव में सभी के लिये दुःखदायक थी। उनकी सहृदयता, उनका स्निग्ध प्यार, उनका सरल व्यवहार—सब कुछ असाधारण था, जिससे सभी वशीभूत हो जाते थे।

एक वशीभूत नहीं थे तो सम्राट अशोक, जिन्होंने एक दासी का प्रेम स्वीकार कर साम्राज्ञी के सात्विक प्रेम का तिरस्कार किया था।

और वह साम्राज्ञी भी कैसी कि जिसने घुट-घुटकर मर जाना उचित समझा, परन्तु अपने पतिदेव के समक्ष कोई अभियोग उपस्थित नहीं किया।

युवराज ने अपने आँसू पोंछे।

"आमात्यश्रेष्ठ ने आपके लिए एक गुप्त पत्र भी दिया है, युवराजदेव!..." सन्देश-वाहक ने कहा।

"कहाँ है?..." विस्मित होकर पूछा युवराज ने।

सन्देश-वाहक ने एक दूसरा पत्र निकाल कर युवराज की हथेली पर रखा दिया।

पढ़ने लगे युवराज कुणाल—

मौर्यकुल भूषण, धर्मविवर्धन युवराज कुणाल देव के चरण-कमलों में आमात्यश्रेष्ठ का प्रणाम! अग्रमहिषी की मृत्यु का समाचार पाकर युवराजदेव अत्यन्त चिन्तित होंगे, यह स्वाभाविक है। उनपर आपका सगी माता जैसा स्नेह था। उनकी मृत्यु अत्यन्त रहस्यमय अवस्था में हुई है। पिछले दो वर्षों से भयानक चिन्तानल में जलती रही थीं वे। इसी चिन्ता ने ही अन्त में उनके प्राण हर लिए।

अग्रमहिषी देवी थीं। उन्होंने अपना प्राण विसर्जन कर दिया, परन्तु अपने देश की मर्यादा अक्षुण्ण रखी। चिन्तानल में जल-जलकर

मृत्यु को प्राप्त हुई, मगर मुँह से एक आह भी न निकली।

मृत्यु के एक दिन पहले, मुझे वृद्ध समझकर साम्राज्ञी ने वह गु वेदना मुझे बताई थी। वही शब्द उनके अन्तिम शब्द थे।

उन्होंने कहा था कि सम्राट अशोक परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षि से प्रेम करते हैं। यह उन्होंने स्वयं अपने नेत्रों से देखा था और का से उनकी मादक बातें सुनी थीं। यही उनकी मानसिक चिन्ता क कारण था। उनकी मृत्यु की यह बात मेरे अतिरिक्त और कोई न जानता। आपसे मैंने इसलिए बताया है कि आप युवराज हैं औ सम्राट देव के हृदय में तिष्यरक्षिता का बढ़ता हुआ प्रभाव, आप लिए भी भविष्य में हानिकर हो सकता है।

युवराज पत्र हाथ में लिए गम्भीर विचारों में डूब गये।



समय का चक्र घूमता हुआ चला गया और पलक झपते चार वर्ष और व्यतीत हो गये। इस अवधि में सम्राट अशोकवर्धन अग्रमहिषी असन्धिमित्रा के मृत्यु का सन्ताप भूल गये और उनके हृद-मन्दिर पुनः तिष्यरक्षिता की मनोहारिणी प्रतिमा आ विराजी।

वह तिष्यरक्षिता—

"जो सम्राट अशोक के प्रेम की भिखारिणी ही नहीं, उनके वैभव की अधिकारिणी भी बनना चाहती थी। जो राजमहिषी बनने का स्वप्न देखती हुई मौर्य-साम्राज्य की बागडोर अपने हाथों में करना चाहती थी।

वह तिष्यरक्षिता—

जो सम्राट के वृद्ध शरीर को अपना यौवन-आसव पिलाकर, उन्हें सब कुछ भूल जाने को बाध्य करना चाहती थी। अब तक तिष्यरक्षिता परिचारिकाश्रेष्ठी ही थी, परन्तु सम्राट की प्रणयिनी

होने के कारण राज-प्रसाद में अब उसका सम्मान बढ़ गया था। छोटे-बड़े सभी राज-कर्मचारी उसका आदर करत थे। सम्राट की यह प्रणय-गाथा धीरे-धीरे प्रजा में प्रसार पा रही थी। अब तक प्रजा के हृदय में सम्राट के प्रति जो विशेष आदर और सम्मान का भाव, था, वह अब धीरे-धीरे घृणा में परिवर्तित होने लगा था। परन्तु सम्राट अनभिज्ञ थे। तिष्यरक्षिता के यौवन ने उन्हें सब कुछ भूल जाने के लिये बाध्य कर दिया था।

युवराज कुणाल अब तक उज्जयिनी में ही थे। राजमहिषी असन्धिमित्रा की मृत्यु के पश्चात्, केवल एक सप्ताह के लिए वे कांचनमाला और सम्प्रति के साथ पाटलिपुत्र आये थे। इसके बाद चार वर्षों से वे बराबर उज्जयिनी में ही थे। अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण वे पाटलीपुत्र आना चाहते हुए भी नहीं आ पाये थे।

आमात्यश्रेष्ठ के पत्रों द्वारा सम्राट और तिष्यरक्षिता की प्रणय कहानी का समाचार उन्हें समय-समय पर मिलता रहता था।

आजकल साम्राज्य का सारा भार वृद्ध आमात्यश्रेष्ठ पर आ पड़ा था। सम्राट तो दिन-रात राग-रंग में तल्लीन रहते थे।

"तिष्यरक्षिता उनके जीवन की ज्योति थी, उनके नयनों की नींद थी, उनके शासन की आधार-शिला थी, उनके हरे-भरे उद्यान की मुकुलित कलिका थी।

उस दिन!

सम्राट अशोक शयनागार में तिष्यरक्षिता के साथ व्यस्त थे। शयन-प्रकोष्ठ के वाहिद्वार पर सशस्त्र प्रहरी उपस्थित थे।

आमात्यश्रेष्ठ के अतिरिक्त और कोई भी राजकीय पुरुष सम्राट से नहीं मिल सकता था। शयन-प्रकोष्ठ के प्रहरी सजग हुए...

चिन्तित मुद्रा धारण किये आमात्यश्रेष्ठ को आते देखकर।

आमात्यश्रेष्ठ पास आ गए तो प्रहरियों ने झुककर उन्हें सम्मानप्रदर्शन किया। पुनः द्वार के दोनों बगल स्थिर प्रस्तरवत् खड़े हो गये!

आमात्यश्रेष्ठ के मुख पर वैकल्य एवं चिन्ता की रेखा अंकित थी। वे क्षण भर चुपचाप वाहिद्वार पर खड़े-खड़े, न जा[ने] क्या सोचते रहे। दोनों प्रहरी भी जड़ बने रहे।

"अन्तर्द्वार पर कहो कि आमात्यश्रेष्ठ, सम्राटदेव का दर्श[न] करना चाहते हैं, इसी समय...!" बोले आमात्यश्रेष्ठ।

एक प्रहरी सर झुकाकर, भीतर चला गया।

आमात्यश्रेष्ठ अनुमति की प्रतीक्षा में इधर-उधर टहलते रहे। थोड़ी देर बाद प्रहरी आकर बोला—"आप अन्तर्द्वार पर पधारें देव !"

आमात्यश्रेष्ठ भीतर प्रविष्ट हुए।

लम्बे-लम्बे डग भरते हुए कई विशाल द्वार पार कर चुकने पश्चात्, वे सम्राट अशोक के शयन- प्रकोष्ठ के अन्तर्द्वार पर जा पहुँचे।

अन्तर्द्वार पर सुन्दरी परिचारिकायें प्रहरी का कार्य करती थीं।

परिचारिकाओं ने आमात्यश्रेष्ठ को झुककर सम्मानप्रदर्शन कि[या]।

"सम्राटदेव से निवेदन करो कि आमात्यश्रेष्ठ उनके दर्शनाभिला[षी] हैं..." आमात्यश्रेष्ठ ने गम्भीर स्वर में एक परिचारिका को आ[ज्ञा] दी। परिचारिका भीतर गई और तुरन्त लौट आकर बोली—"आर्या तिष्यरक्षिता की आज्ञा है कि ऐसे समय सम्राटदेव का दर्शन कोई भी नहीं कर सकता..."

आश्चर्यचकित हो गये आमात्यश्रेष्ठ। चौंक कर सिर उठाया उन्हों[ने]। एक परिचारिकाश्रेष्ठी का यह साहस कि वह आमात्यश्रेष्ठ को आज्ञा दे। क्रोध की लालिमा दौड़ गई वृद्ध आमात्य के शुष्क नयनों में।

"सम्राटदेव प्रकोष्ठ में उपस्थित हैं ?" उन्होंने परिचारिका से पूछ[ा]।

"उपस्थित हैं, देव !..."सम्मान के साथ परिचारिका ने उत्तर दिया।

"उन्होंने मेरे आने की बात सुनी ?"

"सुनी थी, देव !..."

"क्या कहा उन्होंने ?...." तीव्र स्वर में बोले आमात्यश्रेष्ठ।

"वही, जो आर्या तिष्यरक्षिता ने कहा था..."

"आर्या तिष्यरक्षिता मत कहो !..." गरजकर बोले आमात्य-श्रेष्ठ—"परिचारिकाश्रेष्ठी कहो।"

"जो आज्ञा देव !"

परिचारिका ने कहा।

आमात्यश्रेष्ठ बेचैनी के साथ न जाने क्या सोचते रहे, फिर चलने के लिए मुड़े। चार पग चलकर; पुनः अन्तर्द्वार पर खड़े हुए। अपनी अनामिका से रत्न जटित मुद्रिका निकाल कर उन्होंने परिचारिका के हाथों पर रख दिया। "इसे सम्राटदेव को सेवा में उपस्थित करो !" आज्ञा दी उन्होंने।

परिचारिका मुद्रिका लेकर पुनः शयन-प्रकोष्ठ मे प्रविष्ट हुई।

सम्राट अशोक और परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिता मधुर संलाप में तल्लीन थे। परिचारिका की चुटकी सुनकर वे सजग हो, उठकर बैठ गये।

परिचारिका पलंग के पास आई, झुककर अभिवादन करने के पश्चात उसने वह मुद्रिका सम्राट के हाथों पर रख दी। मुद्रिका देख कर सम्राट चौंक पड़े। वह मुद्रिका, किसी आवश्यक सन्देश की द्योतक थी।

"क्या है ?..." तिष्यरक्षिता ने भृकुटी संकुचित कर पूछा।

"आमात्यश्रेष्ठ किसी आवश्यक कार्य से मुझसे मिलना चाहते हैं।"

"उन्हें आज्ञा दीजिए कि वे इस समय चले जाँय।"

"नहीं तिष्ये !..." सम्राट बोले—"सन्देश आवश्यक प्रतीत होता है, यह मुद्रिका देखो...."

तिष्यरक्षिता मन-ही-मन आमात्यश्रेष्ठ को कोस रही थी। क्यो वह ऐसे असमय में आये, जब कि वह सम्राट को अपनी छलकती जवानी का आसव पिला चुकी थी और उन्हें मदमत्त बनाकर उनसे जमहिषी घोषित करने का बचन लेना ही चाहती थी। परन्तु सब नष्ट कर दिया आमात्यश्रेष्ठ ने।

"आमात्यश्रेष्ठ को सादर उपस्थित करो !" सम्राट परिचारिका को आज्ञा दी परिचारिका चली गई। तिष्यरक्षि की मुख श्रीम्लान पड़ गई थी, यह देखकर कि सम्राट ने उसके हृद अवहेलना कर आमात्यश्रेष्ठ को भीतर प्रवेश करने की आज्ञा दी।

"हृदयेश्वरी !..." सम्राट बोले—"रुष्ट हो गई ?"

"रुष्ट होने का अवसर आप ही ने तो दिया है..." कहा ति रक्षिता ने, परन्तु मादक अधरों पर मीठी मुस्कान न जाने कह खिल उठी, जिसने सम्राट अशोक को निहाल कर दिया।

"तिष्ये ?" आमात्यश्रेष्ठ आ रहे हैं। तुम पार्श्ववर्ती प्रको जाकर विश्राम करो..." सम्राट ने कहा।

लहरों-सी लहराती- कमर पर लाख-लाख बल देती हुई तिष्यरक्षिता और समीप के द्वार में प्रविष्ट होकर लुप्त हो गई।

उसी समय आमात्यश्रेष्ठ ने सामने आकर सम्राट अशोक अभिवादन किया।

सम्राट ने ध्यानपूर्वक देखा आमात्यश्रेष्ठ की ओर। आमात्य का वृद्ध मुखमण्डल तमतमाया हुआ था और स्वर में तीव्रता रुक्षता थी।

"यह मुझे असह्य है, सम्राटदेव ! यह मेरा प्रत्यक्ष अप है..."

"कैसे आमात्यश्रेष्ठ ?" स्थिर स्वर में पूछा सम्राट ने।

"एक परिचारिका ने आमात्य को आज्ञा दी और श्री सम्रा ने मौन होकर उसका पालन किया..." आमात्यश्रेष्ट बोले—" मेरी सेवा का तिरस्कार है, मेरी वृद्धावस्था का अनादर है, मौर्यो रोमणि।"

"......."

मौन रहे सम्राट अशोक। यद्यपि आमात्यश्रेष्ठ के कथन में प्रति-शत सत्यता थी, परन्तु सम्राट ने इसे अपने प्रति शिष्टता सीमा का अतिक्रमण समझा—

इसलिए वे मौन रहकर कुछ सोचने लगे। सम्राट की मौनावस्था ने आमात्यश्रेष्ठ की क्रोधाग्नि पर हिमवर्षा कर दी।

"मुझे क्षमा करें, सम्राटदेव !..." वृद्ध आमात्यश्रेष्ठ बोले—"मैं विषम परिस्थिति के कारण औचित्य का ज्ञान भूल गया था। मुझे वे दिन स्मरण हो आये, जब मैंने आप को गोद में लेकर प्यार किया था, दुलारा था—उसी वृद्धावस्था के नाते यह सब कुछ कह गया, सम्राटदेव ! क्षमाप्रार्थी हूँ मैं...."

सम्राट ने सर उठाकर गम्भीर नेत्रों से आमात्यश्रेष्ठ की ओर देखा। "आपका कुछ भी अपराध नहीं, आमात्यश्रेष्ठ !..."वे बोले—"अपराधी मैं हूँ...मैं अपने हृदय से विवश हूँ, आदरणीय !..."

"हृदय तो सभी को है, सम्राटदेव ?" आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"परन्तु एक सम्राट का हृदय जन-साधारण की तरह पिछलनयुक्त नहीं होना चाहिए, श्रीमान् !"

"ठीक कहते हैं आप, आमात्यश्रेष्ठ !"

"मैं सम्राटदेव की सेवा में एक आवश्यक बात निवेदन करने आया हूँ..."आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

"वह क्या ?..."

"यही कि सम्राट देव का परिचारिकाश्रेष्ठी की संगति से अधिक प्रभावित होना परिषद् के कानों तक पहुँच गया है..."

"........."

"कल की सभा में प्रजा-परिषद् ने सम्राटदेव के इस आचरण के विरुद्ध, एक प्रस्ताव उपस्थित किया है...."

"........"

"उनका कहना है कि मौर्य सम्राट को क्या अधिकार है कि वे अपनी प्रजा को धर्म-पालन का आदेश देकर, स्वयं धर्म के विरुद्ध आचरण करें !"

"........"

"उन्हें क्या अधिकार है कि इस ढलती अवस्था में, एक युवती

परिचारिका के प्रेमपाश में आवद्ध होकर, राज्य की दुर्व्यवस्था कारण बनें....''

"........."

मस्तक झुकाये चुपचाप सुन रहे थे, सम्राट अशोकवर्धन।

"मुझे क्षमा करें, सम्राटदेव !....'' आमात्यश्रेष्ठ बोले "गुप्तचरों ने जो समाचार मुझे दिये हैं, उनसे विदित होता है कि प्रजा-परिषद् के हृदय पर सम्राटदेव के प्रति जो श्रद्धाभाव विद्यमान वह अब क्रमशः घृणा में परिवर्तित होता जा रहा है....''

"......''

"प्रजा की यह घृणा किसी दिन मौर्यसाम्राज्य के लिए घा प्रमाणित हो सकती है, सम्राटदेव !''

सम्राट को अनुभव हुआ, जैसे उनके हृदय की गति मन्द प जा रही है। उन्होंने कम्पित स्वर में कहा—

"इस समस्या पर विचार करने के लिए मैं एकान्त चाहता आमात्यश्रेष्ठ ! तब तक आप अर्न्तद्वार पर प्रतिक्षा करें।''

"जो आज्ञा !...''

आमात्यश्रेष्ठ बाहर जाने लगे !

द्वार पर रुककर वे पुनः बोले—"क्या मैं सम्राटदेव से निवेदन करने का साहस कर सकता हूँ, कि यदि सम्राटदेव अप हृदय पर अधिकार रखने में असमर्थ हैं, तो परिचारिकाश्रेष्ठी राजमहिषीपद प्रदान कर, प्रजा-परिषद् के सदस्यों में व्याप्त इस घृ को दूर कर देने का सबसे उत्तम उपाय है...''

"........''

सम्राट कुछ न बोले। आमात्यश्रेष्ठ बाहर चले गये। सम्रा के हृदय में विचारों का भीषण संघर्ष प्रारम्भ हो गया। उनके मान पट पर आमात्यश्रेष्ठ की अन्तिम बात अंकित होकर अमिट हो गयी।

अवश्य उन्हें तिष्यरक्षिता को राजमहिषी घोषित करना पड़ेगा तभी प्रजा के हृदय की घृणा दूर की जा सकेगी...और तिष्यरक्षिता

ी जो यौवन-राशि मेरे चतुर्दिक छितरा दी है, उसका उचित
कार भी उसे मिल जायगा।

सम्राट के हृदय पर तिष्यरक्षिता के सौन्दर्य ने जिस वैकल्य
ष्टि कर दी है, वह तृप्ति का सहारा पाकर शान्त हो जायगा।

सम्राट के मुख पर व्याप्त चिन्ता का स्थान, दृढ़ निश्चय द्वारा
त हर्ष ने ले लिया। उनकी सारी चिन्ता दूर भाग गई। प्रसन्नता
नका मन बाँसो उछलने लगा। उसी समय तिष्यरक्षिता ने वहाँ
किया।

"आओ राजमहिषी !"

कहते हुए सम्राट अशोक ने आगे बढ़कर तिष्यरक्षिता को
गन-पाश में आबद्ध कर लिया—

आतुर होठों ने रक्तिम अधरों का रसपान कर लिया।

तिष्यरक्षिता हर्षावेग से विभोर हो उठी। आज वृद्ध सम्राट का
न उसे अत्यन्त मादक प्रतीत हुआ।

उसने सम्राट के मुख से अपने लिए राजमहिषी का सम्बोधन जो
था। कुछ क्षण सम्राट के चौड़े वक्ष से वह लता की तरह लिपटी
पश्चात् पृथक होकर बोली—"मेरे प्रति राजमहिषी का सम्बोधन
स तो नही ?"

"राजमहिषी को संशय नहीं करना चाहिये !..." सम्राट बोले–
न से आप वस्तुत: मौर्य साम्राज्य की साम्राज्ञी...और सम्राट
क की हृदयेश्वरी हैं..."

"ओह !...यह स्वप्न तो नहीं है, सम्राटदेव !...." कहकर
रक्षिता ने सम्राट के वक्ष में पुन: अपना सौन्दर्य छिपा लिया।

"यह सूर्य के अस्तित्व की तरह सत्य है, आर्ये !"

सम्राट ने तिष्यरक्षिता के सर पर राजमहिषीपद का द्योतक
.त किरीट अपने हाथों से रख दिया...और उसके कटि-प्रदेश
वेष्ठित कर स्वर्ण-पट्टिका पर आ बैठे।

थेली बजाते ही परिचारिका उपस्थित हुई।

"आमात्यश्रेष्ठ को भीतर आने की आज्ञा सुनाओ ?"

परिचारिका चली गई।

आमात्यश्रेष्ठ जब भीतर प्रविष्ट हुए तो उन्हें यह देखकर नहीं हुआ कि परिचारिकाश्रेष्ठो तिष्यरक्षिता, सम्राट के पास पट्टिका पर बैठी है और उसके मस्तक पर राजमहिषी का है। उन्होंने झुककर सम्राट और नव-सम्राज्ञी को अ किया।

"राजमहिषी की जय हो ?" वे बोले।

"साम्राज्य भर में घोषणा कर दीजिए, आमात्यश्रेष्ठ सम्राट ने आज्ञा दी—"और शुभ विवाह का आयोजन कीजिये...."

"जो आज्ञा देव ! क्या युवराज कुणालदेव को भी सूचित देना आवश्यक है ?"

"अवश्य..." तिष्यरक्षिता ने सम्राट का स्थानापन्न कह दिया।

तब दोनों को अभिवादन कर आमात्यश्रेष्ठ बाहर चले गये



पक्षियों के मधुर कलरव ने, सुप्त मानव को प्रातः जाग सन्देश सुनाया। उज्जयिनी नगरी की सुषमा पर रक्तरंजित लोट-पोट करने लगी। लालिमा के आँचल से, बाल-सूर्य का प्रका गोला मुस्कराने लगा। युवराज कुणाल के प्रासाद का मनोरम सुनहली किरणों का क्रीड़ास्थल बन गया। युवराज और यु कांचनमाला उद्यान में टहलते हुए बालसूर्य का स्वागत कर रहे थे

बीच-बीच में उन दोनों में सुमधुर वार्तालाप भी रहा था।

"देवी कांचनमाला !"

"आज्ञा युवराजदेव !"

"माता असन्धिमित्रा को स्वर्ग सिधारे आज चार वर्ष व्यतीत हो हैं, परन्तु लगता है जैसे कल की बात हो। उनकी स्मृति अब मस्तिष्क में उसी रूप में विद्यमान है, ऐसा क्यों ?" युवराज कहा।

"देव को विमाता बहुत प्रिय थीं, इसीलिए !" कांचन बोली।

"माता पद्मावती के पश्चात्, माता असन्धिमित्रा ने ही मुझे पाल- कर बड़ा किया था, तो क्यों न उनके प्रति मेरे हृदय में महती ा हो..."

"देव यथार्थ कहते हैं —" कांचन बोली—"इधर पाटलीपुत्र से ई समाचार नहीं आया ?..."

"पिछले पत्र में आमात्यश्रेष्ठ ने लिखा था कि सम्राटदेव चारिका के अत्यधिक सम्पर्क में आ गये हैं..." युवराज ने कहा।

"सम्राटदेव इस अवस्था में भी प्रणय-क्रीड़ा कर रहे हैं..." चन बोली—"क्या यह श्री सम्राटदेव के लिए उचित है ?"

युवराज कुणाल कुछ न बोले और एकटक सामने की ओर देखते , क्योंकि एक परिचारिका हाथ में कोई पत्र लिए इधर ही आ रही । परिचारिका ने युवराज और युवराज्ञी को सम्मान प्रदर्शित किया र तब हाथ का पत्र युवराज के आगे कर दिया। युवराज ने पत्र कर पूछा—"किसने दिया है यह पत्र ?..."

"प्रजापति महोदय ने ! पाटलीपुत्र से एक सन्देश वाहक यह पत्र कर आया है..." परिचारिका ने उत्तर दिया।

"जा सकती हो तुम।" परिचारिका चली गयी। युवराज नपूर्वक वह पत्र पढ़ने लगे। पढ़कर उन्होंने कांचन की ओर श्चर्ययुक्त मुद्रा से देखा और बोले—"देवी कांचनमाला !..."

"क्या है देव ?..."

"निमंत्रण-पत्र है !"

"निमंत्रण-पत्र ?"

आश्चर्य हुआ कांचन को।

"हाँ, वैवाहिक निमन्त्रण-पत्र !...."

"किसका विवाह है, देव ?"

"सम्राट देव का।"

"क्या कहते हैं आप !..." आश्चर्यचकित होकर पूछा ने—"क्या सम्राटदेव का विवाह होगा ?...."

"हाँ !"

"किससे ?"

"परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिता से।" युवराज बोले।

"मैं देखती हूँ कि सम्राटदेव अब धर्मप्रचार का कार्य प्रणयप्रचार में तल्लीन हो गये हैं।"

कटाक्षपूर्ण भंगिमा से देखा कांचन ने युवराज को ओर।

"तुम भी प्रणय का प्रचार करना आरम्भ कर दो, आर्ये !

"योग्य शिष्य मिलना दुर्लभ है..." कांचन ने कहा।

"मुझे हीं शिष्य बना लो न ?..." युवराज हँसकर "पहले-पहल मुझे ही प्रणय-दीक्षा देने की कृपा करो।"

"आप तो पहले ही प्रणय की दीक्षा ले चुके हैं..."

"किससे ?..."

"सम्राट कुमारी संघमित्रा से !" हृदयभेदी मुस्कराहट और आँखों से आसव छलकाती कांचन बोली।

युवराज ने कांचन के व्यंग्य पर मुस्कुरा दिया—

और निर्निमेष नयनों द्वारा कांचन का रूपासव पान करते

"हमलोगों का सम्राटदेव के विवाह में सम्मिलित होना आ है क्या ? ..." कांचन बोली।

"अवश्य, हम शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे..." यु ने कहा।

"मेरा हृदय न जाने क्यों इस विवाह का समाचार

बड़ाने लगा है, देव !"

"क्यों ?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवाह हम सबके लिए अनिष्टकारी सिद्ध होगा..." कांचन बोली ।

"नहीं देवि ! .." युवराज ने कहा—"ऐसी अमंगल घोषणा न करो । भगवान करे, यह विवाह सबके लिए सुखप्रद हो ।"

"आप युवराज हैं, परन्तु हो सकता है कि तिष्यरक्षिता के प्रवल प्रेम के वशीभूत होकर सम्राटदेव आपको पदच्युत कर, तिष्या की सन्तान को युवराजपद प्रदान कर दें...'"

"आज तुम क्या अशुभ बातें सोच रही हो देवि कांचनमाला !" युवराज बोले—"मैं तो प्रसन्न हूँ कि मुझ मातृ-विहीन के लिए एक नवीन माता प्राप्त होगी और तुम न जाने कहाँ-कहाँ की बातें सोच लाई । देवि ! मैं युवराजपद का इच्छुक नहीं । सम्राटदेव की आज्ञा से मैं अपना प्राण तक दे सकता हूँ, युवराजपद तो तुच्छ वस्तु है..."

"मुझे क्षमा करें देव !"

"तुम पाटलीपुत्र-प्रस्थान की सारी तैयारी शीघ्र कर लो ।"

"हम लोग कब प्रस्थान करेंगे ?"

"कल प्रातःकाल ।"

दूसरे दिन प्रातःकाल एक सुसज्जित सुविशाल रथ पर आरूढ़ होकर युवराज कुणाल, युवराज्ञी कांचनमाला और युवराज सम्प्रति पाटलीपुत्र की ओर चल पड़े । रथ के आगे पीछे सहस्र अश्वारोही चल रहे थे । तीस दिन की अनवरत यात्रा के पश्चात वे लोग पाटलीपुत्र के सन्निकट पहुँचे । युवराज ने एक पायक द्वारा अपने आगमन की सूचना भेज दी । सम्राट के विवाह-सम्बन्धी आवश्यक कार्यों में आमात्यश्रेष्ठ के व्यस्त रहने के कारण, युवराज कुणाल का स्वागत करने के लिए बलाधिकृत और महाभण्डागाराधिकृत पधारे थे ।

युवराज अतीव उत्साह के साथ राजनगर पाटलीपुत्र में हुए । नगर में प्रवेश करते ही उन्हें प्रतीत हुआ जैसे वे अनोखे

संसार में आ गये हैं। राज-पथ के दोनों ओर की अट्टालिकाएँ म... सा देदीप्यमान हो रही थी। स्थान-स्थान पर मंगल-वाद्य ध्वनि... रहे थे। प्रजा में हर्ष एवं उत्फुल्लता दृष्टिगोचर हो रही थी। युव... कुणाल सपत्नीक राज्यप्रसाद के अतिथि-प्रकोष्ठ में ठहराये गये। का... देश के उपप्रजापति सम्राट कुमार दशरथदेव भी आ गये थे। युवरा... कुणाल और दशरथ एक दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।... कई वर्षों के पश्चात् दोनों भ्राताओं का सम्मिलन हो रहा था।

दोनों का एक दूसरे पर प्रगाढ़ प्रेम था। दोनों के पिता... थे—परन्तु माताएँ दो थीं।

दूसरे दिन प्रात काल !

नगर के नगाड़े गड़गड़ा उठे। दुन्दुभियों की गगनभेदी चीत्का... चारों ओर गुंजरित हो उठी। आज सम्राट अशोक का शुभ वि... था। राजनगर के बड़े-बड़े सामन्त, माण्डलिक, श्रेष्ठी तथा गणमा... सज्जन आमन्त्रित थे। स्वयं युवराज कुणाल विवाह-मण्डप के प्र... द्वार पर खड़े होकर सबका स्वागत कर रहे थे। विद्वान पुरोहि... के मन्त्रोच्चारण ने, सम्राट अशोक और तिष्यरक्षिता को वैवाहि... सूत्र में आबद्ध कर दिया। उपस्थित समुदाय का सम्मिलित जयघो... वातावरण को प्रकम्पित कर उठा—

सम्राट की जय ! साम्राज्ञी की जय !

तिष्यरक्षिता का मनमयूर प्रसन्नता से नृत्य कर रहा था।

आज उसके जीवन की बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा सफलीभूत... थी। जिस पद की कामना आज वह कई वर्षों से करती आ रही... उसी पर आज वह आसीन थी।

तो क्यों न हर्षविह्वल होती !

सम्राट, विवाहित साम्राज्ञी का हाथ पकड़कर शयनप्रकोष्ठ में आ... और पलंग पर बैठकर वार्तालाप करने लगे।

दोनों अत्यन्त प्रसन्न थे आज।

सम्राट प्रसन्न थे कि उन्हें तिष्यरक्षिता जैसी सौन्दर्यमयी मादक...

ल गई और अब निर्द्वन्द प्रकटरूप से युगों की अपनी प्यास बुझा
केंगे।

तिष्यरक्षिता प्रसन्न थी कि अब वह राजमहिषी है। केवल सम्राट
के हृदय की ही नहीं, सम्पूर्ण साम्राज्य की अधिष्ठात्री है। अब वह
चाहे जो कुछ कर सकती है। अब प्रत्येक राज-कर्मचारी को उसके
संकेतों पर नर्तन करना पड़ेगा।

"तिष्ये !" पुकारा सम्राट ने।

"प्राण !" कहा तिष्यरक्षिता ने।

उसी समय आ गये युवराज कुणाल।

पहले सम्राट का और तब राजमहिषी का चरण-स्पर्श किया
उन्होंने।

"सब काम समाम हो गया युवराज ?" पूछा सम्राट ने।

"हाँ देव !....सब अतिथि अपने-अपने निवासस्थान को पधार
चुके हैं...." युवराज ने उत्तर दिया।

तिष्यरक्षिता निर्निमेष दृष्टि से युवराज की रूपश्री निहार रही
थी। उसके नेत्र युवराज के मुख-मण्डल पर केन्द्रित थे। युवराज
के सौन्दर्य ने उसके हृदय में वर्षों पूर्व से भूकम्प-सा हलचल उत्पन्न
कर रखा था, वह भूकम्प आज उसे रह-रहकर धक्का दे रहा था।

"युवराज !..."तिष्यरक्षिता बोली—"तुम मुझसे रुष्ट हो क्या ?"

"भला यह कभी सम्भव हो सकता है, माताजी ?" युवराज ने
नतमस्तक होकर कहा।

"कल से तुम आये हो, परन्तु मुझसे मिले नहीं, मुझसे वार्तालाप
नहीं किया तो मेरा यह समझना कि तुम रुष्ठ हो, क्या असंगत है ?"

"मुझे क्षमा करें, माता राजमहिषी ? मैं अत्यन्त व्यस्त था..."
युवराज बोले—"आप पर भला मैं क्यों रुष्ट होने लगा, आप के ही
प्रेम पर तो मुझे भरोसा है—आप का ही मोह तो मुझे यहाँ तक
खींच लाया है...."युवराज की स्नेहसिक्त बातों का तात्पर्य तिष्यरक्षिता
ने कुछ और ही लगाया। वह उन शब्दों की मादकता में संज्ञाहीन-

सी होकर झूम उठी।

उसके अंग-अंग में युवराज का यौवन प्रवेश कर, टीस करने लगा। उसे लगा जैसे युवराज की मादक उँगलिया चोली मे प्रवेश कर, उसके पुष्ट वक्षस्थल पर आ पड़ी हैं और उस स्पर्श से आनन्दविभोर हो गई है। उसने अपने नयनों की म युवराज के नयनों में उड़ेल दी। युवराज उस कटाक्ष की चोट खा चौंक पड़े। उन्होंने कुछ नहीं समझा। कुछ जाना—कुछ नहीं जा जो कुछ उन्होंने समझा, उनसे उसका न समझना ही अच्छा था।

तिष्यरक्षिता के हृदय में पाप था—

और युवराज के हृदय में था प्रबल मातृस्नेह!

एक ओर वासना थी—और दूसरी ओर थी स्वच्छ भावना!

एक ओर तृष्णा का उद्वेग था तो—

दूसरी ओर तृप्ति की गम्भीरता थी!

वह सुहागरात थी—

अंग-अंग में मादकता समेटे, वक्षस्थल पर मधुर कम्पन धा किये, नयनों में आसव भरे, अधरों पर लालिमा बिखेरे, कटिप्रदेश प नीले लहरों-सी लहर छिपाये, लेटी थी स्वर्ण-पट्टिका पर तिष्यरक्षिता

और सम्राट अशोक अपनी वृद्धावस्था को यौवन की स्मृति पिला हुए, तिष्यरक्षिता का अलसित शरीर गोद में लिये बैठे थे।

"तिष्ये!..." पुकारा सम्राट ने।

"देव!..." तिष्यरक्षिता बोली, परन्तु उसकी भंगिमा उन्मत थी

सम्राट ने आवेश में आकर तिष्यरक्षिता का आलिंगन किया—

और तिष्यरक्षिता को लगा, जैसे एक प्राणविहीन शरीर उसके यौवन से आ चिपका हो—

जैसे जर्जर वृद्धावस्था, सुगठित यौवन के गले आ लिपटी हो।

उसने क्यों एक वृद्ध को अपना यौवन सौंप दिया? क्यों किसी युवक की प्रेयसी न बनकर, एक वृद्ध सम्राट की अंकशायिनी बनी? उसकी आँखों ने क्यों युवराज कुणाल का सौंदर्य नहीं देखा? क्यों वह

अपने यौवन की मादकता लुटा कर राजमहिषी पद की अभिलाषिणी हुई ?

युवराज कुणाल की याद आते ही, वह अनमनी हो उठी । उसका शरीर सिहर उठा । उफ ! युवराज तो उसे माता कहते हैं । उनके स्वच्छ हृदय में तिष्यरक्षिता के लिए मातृ-स्नेह के अतिरिक्त कुछ नहींहै ।

परन्तु तिष्यरक्षिता का हृदय अपने वश में नहीं रह गया है । वह युवराज का आलिंगन करना चाहती है—

उसे लगा, जैसे वह युवराज की गोद में पड़ी हो और युवराज ने बलपूर्वक उसकी जवानी को अपने सीने से लग रखा हो तथा उसके तृषित अधरों पर जलते हुए अंगारे रख दिये हो ।



जब दिन का हारा-थका प्रकाश, श्यामकाय रात्रि-सुन्दरी के आँचल में अपना गोरा-गोरा मुख छिपा लेता—

जब पक्षियों का गुंजरित कलरव, नीरवता धारण कर नीड़ों में चुपचाप जा बैठता—

जब स्वच्छ आकाश पर छाये हुए श्वेत बादल के टुकड़े, हँसती हुई तारिकाओं से क्रीड़ा करते—

जब जाग्रत मानव, निद्रादेवी का आलिंगन कर सो जाता— तब भी !

तब भी तिष्यरक्षिता जागती हुई, स्वर्णपट्टिका पर पड़े-पड़े करवटे बदलती रहती और बेचैनी दूर करने का व्यर्थ प्रयत्न करती । आसव-पान का भी व्यसन उसे था । कई पात्र आसव पान करके भी वह युवराज की मधुर मूर्ति अपने हृदय से न निकाल सकी । वह सदैव युवराज के मादक नयनों का ध्यान किया करती । युवराज की

सुन्दरता ने उसे उन्मादिनी बना दिया था। विचित्र दशा थी तिष्य-रक्षिता की।

वासना का वैकल्य और अतृप्ति की बेचैनी वह अब जान पाई थी।

सब कुछ जानकर भी कभी वह अत्यन्त बेचैन हो उठती थी।

क्यों उसने सम्राट अशोक से प्रेम का कल्पित स्वांग रचा?

क्यों उसने राजमहिषी बनने की अभिलाषा से सम्राट से विवाह किया?

वह नहीं जानती थी कि एक दिन युवराज कुणाल का सौंदर्य उसके हृदय में हाहाकार की सृष्टि कर, उसकी सारी सुख-शान्ति नष्ट कर देगा। वह नहीं जानती थी कि उसके अतृप्त यौवन में वासना की रंगीन मस्ती भर जायगी और वह पागल हो उठेगी—वह नहीं जानती थी कि राजमहिषी का पद पाकर भी, उसकी इठलाती हुई जवानी एक युवा के मादक चुम्बन के लिये, प्रगाढ़ आलिंगन के लिये सिसकती रह जायगी।

तिष्यरक्षिता बेचैन थी—बेहाल थी—व्यथित थी।

आजकल उसे एकान्त बहुत प्रिय था। वह घण्टों तक राजोद्यान के सरोवर के किनारे बैठकर, कुलबेरा के पुष्पों को निहारा करती थी। फूलों पर मँडराते हुए भ्रमरों को देखकर सोचा करती थी वह, कि उसके वक्ष सरोवर में खिले हुए दो यौवन सरसिजों पर, मँडराने के लिये कोई भ्रमर नहीं।

है तो केवल एक!

जिसकी जवानी बीत चुकी है—

जिसकी वासना वृद्धावस्था की गोद में जा छिपी है—

जिसके अंग-अंग में शैथिल्य लहरा रहा है—

क्या कभी वह मदमत्त कलिका, उस प्राणहीन भ्रमर से तृप्ति पा सकती है?

जब उनमत्त शरीर पर जवानी के फल गदराये हों तो उसे तोड़ने के लिए बलिष्ठ पुरुष की आवश्यकता होती है—तिष्यरक्षिता कभी यह सोचते-सोचते बेचैन हो जाती।

युवराज उसके पुत्र लगते हैं, फिर भी हृदय की उद्दाम वासना उन्हें पाने के लिए बेचैन है।

उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि चाहे जैसे हो—छल से, कपट से, विश्वासघात से प्रार्थना से, वह युवराज को अपना अवश्य बनायेगी और युवराज को अपना यौवनासव पिलाकर, उन्हें कांचनमाला को भूल जाने के लिए बाध्य करेगी। दृढ़ निश्चय से, तिष्यरक्षिता के तड़पते हुए हृदय को अगम शान्ति मिली। वह उठकर उद्यान में आ गई।

स्वच्छ सरोवर के वक्ष पर मुस्कुराते हुए कुलबेरा ने हँसकर उसका स्वागत किया। भँवरों ने गुन-गुन स्वर में उसे मस्ती का राग सुनाया। वह स्फटिक शिला पर बैठकर स्वयं भी गुनगुनाने लगी। हृदय का वेदनामिश्रित हर्ष, अधरों से गीत बनकर फूट निकला। वातावरण शांत होकर तिष्यरक्षिता का मादक-गीत सुनने लगा—

दिल में मीठी आग, नयन मे सागर बनकर आना।
होठों में मदिरा भर कर, धीरे से मुस्काना॥

निर्मल जल में देख रहे—
बादल अपनी परछाई।
मड़े घन विलोकि,
पंखुड़ियाँ खिलकर मुस्काई॥

आग लगायी दीपक ने, तड़प रहा परवाना।
होठों में मदिरा भर कर, धीरे से मुस्काना॥

मेरे नयनों में हँसती है,
किसकी सूरत प्यारी?
भोले से दिल में मेरे,
किसने तूफान मचा दी?

भँवरा है बेहाल, कली का देख-देख शरमाना।
होठों में मदिरा भरकर, धीरे से मुस्काना॥

तुमने मेरे टूटे दिल से,
आँख मिचौनी खेली।
'आशाएं' जल भस्म हुई सब,
'कान्त' मुसीबत झेली ॥
जिसने इतनी पीर दिया, उसको हमने पहचाना।
होंठों में मदिरा भरकर, धीरे से मुस्काना ॥

गीत-लहरी ने वातावरण को मादकता प्रदान की—पक्षियों के गुंजरित कलरव ने उस मादकता में योगदान दिया।

तिष्यरक्षिता युवराज की याद में तल्लीन थी—भूल गई थी वह सब कुछ।

"माता जी!"

पीछे से आवाज आई।

तिष्यरक्षिता आश्चर्य से चौंक पड़ी, वह चिरपरिचित स्वर सुनकर।

घूमकर देखा तो युवराज कुणाल खड़े थे—मुखाकृति पर मन्द-मन्द मुस्कुराहट नर्तन कर रही थी। तिष्यरक्षिता को अपनी ओर देखते पाकर युवराज ने उसे झुककर प्रणाम किया।

"आओ युवराज!..." तिष्यरक्षिता बोली—"अभी तुम्हारा ही ध्यान कर रही थी मैं..."

मधुर मुस्कान थिरक उठी राजमहिषी के अधरों पर और आसव-भरे नयन युवराज के मुख पर जाकर स्थिर हो गये।

युवराज आकर तिष्यरक्षिता की बगल में बैठ गये।

बोले—"माता राजमहिषी की मुझपर बड़ी कृपादृष्टि है..."

हरा-भरा उद्यान, हँसते हुए पुष्प, चहकते हुए पक्षी, तृषित अधर और अधूरी आशाएं!

युवराज का सामीप्य! छलकता सौन्दर्य! असाधारण यौवन! सब कुछ था—कोई अभाव नहीं था।

तिष्यरक्षिता बेचैन हो उठी। हृदय में हिलोर मारती वासना,

सके वक्ष पर कम्पन बनकर नृत्य कर उठी।

युवराज चौंक पड़े, यह देखकर।

"युवराज!..." अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से तिष्यरक्षिता ने देखा राज की ओर।

"माता!..."युवराज बोले—"आपकी स्वर-रागिनी अत्यन्त ुर है, मुझे आकर्षित कर लिया उसने...सम्राटदेव का दर्शन कर र से जा रहा था तो आपका गायन सुनकर अपने को यहाँ आने न रोक सका।"

"तुम्हें केवल मेरे स्वर में ही आकर्षण प्रतिभासित होता है राज?...."

"नहीं माताजी! आप भी आकर्षणमयी हैं..."युवराज ने हा—"आपका स्नेह पाकर मैं राजमहिषी पद्मावती को भी विस्मृत र बैठा हूँ..."तिष्यरक्षिता की वासना कालिमाछन्न हो उठी युवराज इस उत्तर से।

परन्तु वह निराश होने वाली नहीं थी। उसने प्रण कर लिया कि वह उसे अपने रूप-जाल में आबद्ध कर, अपनी सिसकती सना को शान्त करके रहेगी।

"तुम बहुत भोले हो, युवराज!"

कहकर तिष्यरक्षिता ने युवराज के कन्धे पर अपना हाथ रख या

युवराज ने उसका हाथ हटाया नहीं। उनको उस स्पर्श में तृस्नेह का स्पर्श मिल रहा था। तिष्यरक्षिता की वासनापूर्ण भावना कदाचित् वे अबतक अनभिज्ञ थे।

"माता!...." युवराज बोले—"कल प्रातःकाल मैं सम्प्रति और चनमाला के साथ, उज्जयिनी को प्रस्थान कर रहा हूँ।" सुनकर ंक पड़ी तिष्यरक्षिता।

"क्या वास्तव में कल प्रस्थान कर रहे हो, युवराज?"

युवराज के कन्धे पर रखा हुआ तिष्यरक्षिता का हाथ, धीरे-धीरे

शिथिल पड़ रहा था और उसका यौवनमत्त शरीर युवराज के अ
सम्पर्क में आ रहा था। "मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी, युवराज !"

"जाना ही होगा माता !...मेरा जाना अनिवार्य है। स
से अनुमति ले चुका हूँ। अब केवल आपकी आज्ञा की देर
युवराज बोले।

"मैं कैसे बताऊँ युवराज ?...कैसे बताऊँ कि....?"

तिष्यरक्षिता का स्वर न जाने क्यों कम्पित हो उठा था ?
कसकर युवराज का सुगठित शरीर अपने कोमल बाहुओं में
कर लिया। युवराज का वियोग उसकी वासना के लिए असह
उसकी वासना का आवेग, उसके नेत्रों में आँसू बनकर उमड़ प

"कैसे बताऊँ तुम्हें युवराज कि मैं तुम्हारे बिना न
सकती...." उसने अपने बाहुओं का बन्धन और दृढ़ किया।

युवराज चौंक पड़े तिष्यरक्षिता के पुष्ट वक्षस्थल का मादक
अनुभव कर।

परन्तु युवराज के निर्दोष शरीर का सम्पर्क पाकर तिष्य
को कलुषित भावना, न जाने कैसे लुप्त हो चली ! एक क्षण के
हृदय वात्सल्लस्नेह से पूर्ण हो उठा। हृदय की वासना को न
किस अदृश्य शक्ति ने ठोकरें लगा कर सजग कर दिया। उसे
जैसे वह एक नन्हें शिशु को अपने कलेजे से लगाये हो। भाव
यह परिवर्तन केवल एक क्षण में हो गाया—और उसी आवेग
बोल उठी—"कैसे बताऊँ तुम्हें युवराज कि पुत्र का वियोग
नहीं कर सकूँगी मैं...."

"माता !..."

हर्षविह्वल वाणी में बोले युवराज और बच्चे की तरह ति
क्षिता के वक्ष से चिपक गये। उन्हें अपनी माता पद्मावती की
हो आई। उनके हृदय में तिष्यरक्षिता के प्रति जो स्नेह-म
उत्पन्न हो आई थी, वह एकाएक विलीन हो गई। उनका हृदय
धिक्कार उठा। तिष्यरक्षिता निर्जीव-सी हो उठी। उफ् ! अन

हो उसके मुख से युवराज के लिये 'पुत्र' शब्द किस प्रकार निकल ा ? किस शक्ति ने उसकी जिह्वा से यह उच्चारित करा दिया ? सको वह अपनी वासनापूर्ति का साधन समझती है, उसे वह किस प्रकार समझ सकती है ? उसने अपना हृदय टटोला।

नहीं ! उसने युवराज को पुत्र नहीं समझा है—कभी समझ भी नहीं कती। युवराज उसके पुत्र नहीं—उसकी वासना के प्रतीक हैं ! नके यौवन के आधार हैं, उसके नयनों की मदिरा हैं, उसके अधरों मुस्कान हैं, उसके वक्षस्थल के कम्पन हैं—आसव की मादकता बन र, वह उनके मन-मस्तिष्क पर छा जायगी। युवराज का अंग-प्रत्यङ्ग ष्यरक्षिता के रोम-रोम में समा गया है। तो फिर उसने एकाएक वराज के लिये पुत्र सम्बोधन किस प्रकार कर दिया ?

तड़फड़ा उठी तिष्यरक्षिता। हृदय में उसके आँधी चल पड़ी—ों कहा उसने युवराज को पुत्र ?

"युवराज ! "बोली वह—"मेरी आज्ञा है कि तुम उज्जयिनी जाओ—तुम्हारे चले जाने से मुझे अत्यधिक दुःख होगा...."

"माता की आज्ञा शिरोधार्य है..." युवराज ने कहा—"परन्तु जकार्य किस प्रकार चलेगा ?..."

"मैं सम्राटदेव से कहकर कुमार दशरथ को उज्जयिनी भेज दूँगी। म यहाँ पाटलीपुत्र में रहकर राककार्य देखना। सम्राटदेव वृद्ध हो ले हैं—उन्हें तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।"

"माता राजमहिषी की जैसी आज्ञा।"

उठकर खड़े हो गये युवराज।

"बैठो युवराज ?...जाने की इतनी शीघ्रता क्यों ?..."

"कांचन मेरी प्रतिक्षा कर रही होगी, माता ! मैं जाना चाहता —"

"एक बात कहूँ...मानोगे ?" पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"आज्ञा कीजिये !..."

"तुम मुझे माता न कहा करो।"

"क्यों ?....क्यों न कहूँ ?"

"क्या मेरी अवस्था तुम्हारी माता होने योग्य है ?.... तुमसे भी कई वर्ष छोटी नहीं हूँ...."

"अवश्य हैं..." युवराज बोले—"अवस्था से मर्यादा का ... कित नहीं होता। माता का मूल्यांकन पद से होता है। आ... पद श्रेष्ठ है, इसलिये आप मेरी माता हैं...."

"अच्छा जाओ....फिर कब मिलोगे ?"

"जब आपकी आज्ञा होगी।" युवराज प्रणाम करके चले...

आज उन्हें तिष्यरक्षिता का चरित्र अत्यन्त गहन प्रतीत... रहा था। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि तिष्यरक्षिता... चाहती क्या है ? एक क्षण के लिये उनके हृदय में सन्देह अवश्य... था, परन्तु तिष्यरक्षिता के मुख से अपने लिये पुत्र शब्द सुन... वह सन्देह भस्म हो चुका था। और यही कारण था कि तिष्यर... आज उन्हें बहुत विचित्र लगी थी।

युवराज के चले जाने पर कई क्षण तक तिष्यरक्षिता चित्र-लि... सी उसी स्थल पर खड़ी रही—अपने आकस्मिक विचार-परिवर्तन... आश्चर्य करती हुई ! जब उसकी तन्द्रा भंग हुई तो वह सम्रा... शयन-प्रकोष्ठ में आई। सम्राट अशोक स्वर्णपट्टिका पर बैठे... द्राक्ष-फल का सेवन कर रहे थे।

तिष्यरक्षिता की रूपमाधुरी ने उनकी वृद्धावस्था को ठोकर... कर जगा दिया। उन्होंने उसका हाथ पकड़कर अपने पास ... लिया और द्राक्ष का एक गुच्छा उसके मुख में भर दिया। तिष्यर... का हृदय घृणा से भर उठा !

"कहाँ थीं अब तक ?" सम्राट ने पूछा।

"राजोद्यान में थी, देव!" तिष्यरक्षिता ने बे-मन से उ... दे दिया। "भद्रे ! तुम्हारी मुखाकृति से ऐसा प्रतीत होता है जैसे ... कुछ चिन्ताग्रस्त हो ?"

"सत्य है आपका अनुमान, देव ! युवराज कुणाल का उज्जयिनी स्थान ही मेरी चिन्ता का कारण है...."

"क्या तुम चाहती हो कि कुणाल पाटलीपुत्र में ही रहें ?"

"हाँ सम्राटदेव!...."तिष्यरक्षिता बोली—"युवराज के प्रति रे हृदय में प्रगाढ़-स्नेह उत्पन्न हो गया है...."

"कुणाल ऐसा ही है..." सम्राट ने कहा—"सभी उसे देखते ही यार करने लगते हैं।"

"मैं चाहती हूँ कि आप कुमार दशरथ को उज्जयिनी का जापतिपद प्रदान कर वहाँ भेज दें और युवराज कुणाल यहीं रहें... नके रहने से आप को शासन-कार्य में सहायता मिलेगी और वे राज-गर की परिस्थितियों से भी सर्वथा भिज्ञ हो जायँगे "

"तुम ठीक कहती हो, भद्रे तिष्यरक्षिता !...." सम्राट वोले—'कुणाल का पाटलीपुत्र में रहकर परिस्थितियों का अध्ययन करना ावश्यक है, क्योंकि मेरे पश्चात् उसे ही सम्राट होना है..."

"यथार्थ कहते हैं, सम्राटदेव !"

तिष्यरक्षिता ने कृत्रिम प्रेम प्रदर्शित करते हुए वृद्ध सम्राट को पने बाहुओं में भर लिया और अपने अरुण अधरों का आसव पिला-कर उन्हें निहाल कर दिया।

सम्राट उन्मत्त हो उठे।

पचास वर्ष के निर्जीव रगों में यौवन लहरा उठा।

८

युवराज कुणाल उज्जयिनी न जा सके।

उनके स्थान पर कुमार दशरथ उज्जयिनी के प्रजापति भेज दिये गये और युवराज कुणाल पाटलीपुत्र में रहकर ज्य-कार्य देखने लगे।

सम्राट अशोक, युवराज का सहयोग पाकर धीरे-धीरे राज्य
से उदासीन रहने लगे और कुछ दिनों में साम्राज्य का सारा
युवराज कुणाल के कन्धों पर आ पड़ा। और सम्राट तिष्यरक्षि
आकर्षण में विभोर होकर दिन-रात शयन-प्रकोष्ठ में पड़े रहते।
रक्षिता सम्राट के लिये प्रबल आसक्ति थी।

सम्राट सब कुछ भूलकर वृद्धावस्था में यौवन का आनन्द
थे। तिष्यरक्षिता ने भी बनावटी प्रेम का स्वांग रचकर सम्राट
विक्षिप्त कर रखा था।

तिष्यरक्षिता !

उसकी मानसिक अशान्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।
का उज्जयिनी जाना उसने केवल इसलिए स्थगित कराया
युवराज के पाटलीपुत्र रहने पर उनका अत्यधिक सम्पर्क उसे प्राप्त
और तब कभी-कभी उसके अतृप्त यौवन को तृप्ति प्राप्त होती रहे

परन्तु उसकी आशाओं ने कभी सफलता की अंगड़ाई नहीं

और उसका यौवन तड़पता ही रहा—सिसकता ही रहा
राज कार्यभार में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें कभी तिष्यरक्षि
पास अधिक देर तक बैठने का अवसर ही नहीं मिलता था।

ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते गये, त्यों-त्यों तिष्यरक्षिया की आ
भयङ्कर रूप धारण करती गयी। पहले तो वह यह चाहती थी
किसी प्रकार युवराज का हृदय वह अपने सौन्दर्य द्वारा विचलि
उनकी तुष्टि करे, साथ-साथ अपनी भी तृष्णा शान्त करे—

परन्तु जब उसने देखा कि युवराज तो प्रस्तर-मूर्ति जैसे हैं
कोई संकेत समझते हैं, न नयनों की भाषा पढ़ सकते हैं, न अधर
मुस्कुराहट देख सकते हैं, और न वक्ष पर खिले हुए दो यौन-पुष्प
पराग, भ्रमर बनकर लूट सकते हैं....तो उसकी आकांक्षा अत्यन्त
हो उठी।

वह चाहे जैसे हो, युवराज को अपने हृदय से लगाकर

वन-ज्वाला शान्त करेगी—

उसका विश्वास था कि विधाता ने उसे अगम रूप प्रदान किया और उस रूप में उन्मादकारी आकर्षण लबालब भरा है—

यदि एक बार युवराज उसके सौन्दर्यासव का पान कर लें, एक ार उसके सुपुष्ट वक्ष की धड़कनें सुन लें, एक बार उसके अधरों पर पने मादक अधरों को क्रीड़ा करने दें—तो जीवन भर युवराज सके दास बनकर रहेंगे। वे भूल जायँगे सब कुछ ! कांचनमाला भी नकी आँखों से उतर जायगी। कभी-कभी विचारधारा में बहकर ह न जाने कहाँ जा पहुँचती ! मानसिक अशांति से उसका हृदय राह उठता। वह बेचैन होकर प्रकोष्ठ में इधर से उधर टहलने गती, कभी-कभी स्वर्णपात्र भर-भर कर आसव पान भी करती। स दिन वह अत्यधिक व्यग्र थी। युवराज को पाने की लालसा उग्र ो उग्रतर हो चली थी।

आज उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि—वह युवराज से पनी लिप्सा अवश्य शान्त करेगी और यदि युवराज अस्वीकार करेंगे तो वह उन्हें पथ का भिखारी बनाकर छोड़ेगी।

वह सम्राज्ञी है। वह सब कुछ कर सकती है। स्त्री के हृदय में वासना का नृत्य बड़ा भयङ्कर होता है और वह वासना जब असफलता के संघर्षण से और भी उत्तेजित हो उठती है, तब स्त्री नागिन बन जाती है।

दृढ़ निश्चय की भावना, आँखों में चमक बनकर उतर आई।

वह उठी, स्वर्ण-पात्र उठाकर उसमें आसव भरा और उल्लसित हृदय से उसे पान किया। दूसरा भरा, फिर तीसरा, फिर चौथा .. आज वह पीती ही जायगी। इतनी पीयेगी कि सारी सद्भावना नशे में डूब जाय। वह चाहती है कि आसव की मादकता उसकी सोई हुई जवानी को ठोकरे मार कर उसका दे। वह चाहती है कि आसव की उष्णता उसके वक्ष में हाथ डाल कर, उसकी अधूरी आशाओं को

गुदगुदा दे।

कई पात्र आसव पी डाला उसने। उसका रग-रग गया। शरीर मस्ती में झूम-झूम उठा। चेतना लुप्तप्राय हो परिचारिका ने भीतर प्रवेश किया, तो राजमहिषी की दशा सन्न रह गई। उसने राजमहिषी को इतना अस्त-व्यस्त कभी देखा था।

वह बोली—"मौर्यकुलभूषण प्रमुख द्वार पर उपस्थित हैं। महिषी के दर्शनों की अभिलाषा रखते हैं...."

तिष्यरक्षिता प्रसन्न हो उठी, युवराज का स्वयं पदार्पण

"प्रवेश की आज्ञा है...." उसने परिचारिका को आदेश

परिचारिका चली गई। कुछ ही क्षणों के पश्चात् युवराज ने वहाँ प्रवेश किया। परन्तु वहाँ आकर उन्होंने जो कुछ देखकर वे आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने देखा, शरीर के वस्त्र व्यस्त हो गये हैं, केश-राशि पीठ पर लहरा रही है, बदन काँप है, आँखों में लालिमा है, अधरों पर वासना की मुस्कान है....

और वक्ष पर दृष्टि पड़ते ही युवराज की दृष्टि नीची हो गई। उल्टे पाँव लौटने लगे। वे समझ गये थे कि आज तिष्यरक्षिता बौद्धधर्म द्वारा त्याज्य वस्तु आसव का सेवन किया है।

जाते हुए युवराज को तिष्यरक्षिता ने दौड़कर पकड़ लिया।

"युवराज! मेरे युवराज!...." वह बोली।

"अपने को संयत करो, माता!"

"मुझे माता न कहो, प्रिय कुणाल! तुम मुझे माता न कहो... लड़खड़ाते स्वर में बोली तिष्यरक्षिता—"तुम्हारे मुख से अपने माता सुनकर मेरा हृदय हाहाकार कर उठता है..."

"माता! आसव त्याज्य है। आप इसका सेवन न किया करें... युवराज ने तिष्यरक्षिता का हाथ पकड़कर स्वर्णपट्टिका पर दिया। तिष्यरक्षिता ने युवराज का हाथ खींचकर उन्हें

स बैठा लिया। तब बोली—"युवराज ! आज मैंने आसव-पान या है, अपने साहस को जगाने के लिए....तुमने मेरे हृदय में हाहा-र की सृष्टि कर दी है, कुणाल !...."

"माता, यह आप क्या कह रही हैं ?"

तिष्यरक्षिता ने युवराज को अपने वक्ष से कस लिया।

बोली—"ठीक कहती हूँ मैं, युवराज ! तुमने अपने सौन्दर्य द्वारा मुझे लूट लिया है...तुमने मेरे यौवन में अव्यक्त बेचैनी भर दी है..."

युवराज स्तब्ध हो गये थे। उनका मस्तिष्क अव्यवस्थित हो रहा था। तिष्यरक्षिता का मादक यौवन युवराज के अंग-अंग से चिपका था। विवस्त्र उन्नत उरोज, युवराज के वक्ष से अठखेलियाँ कर रहे थे।

युवराज आवाक बने रहे।

"बोलो युवराज !....मेरे प्रियतम !"

कहते-कहते तिष्यरक्षिता ने अपने लाल-लाल प्यासे अधरों को युवराज के अधरों से टकरा दिया।

उन्मत्त होकर वह युवराज का चुम्बन करने लगी। वातावरण इतना मादक हो उठा था कि युवराज कुणाल आत्मविस्मृत से हो उठे। एक क्षण के लिए वे अपने आप तक को भूल गये। परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी चेतना वापस लौट आई। नागिन की तरह अपने शरीर से लिपटी हुई तिष्यरक्षिता को उन्होंने निष्ठुरता पूर्वक दूर धकेल दिया।

"कुलटा !..." उनके मुख से निकला और दूसरे ही क्षण वे प्रकोष्ठ से बाहर हो गये।

अपना तिरष्कार देखकर दाँत पीसने लगी तिष्यरक्षिता। वासना की भावना, प्रतिशोधाग्नि में परिवर्तित हो गयी।

वह नष्ट कर देगी युवराज को, जिसने उसकी आशाओं पर तुषारापात किया है। उसकी मृत्यु का कारण बनेगी वह। चैन नहीं लेने देगी उसे। वह उठी। वही अस्त-व्यस्त भंभिगा लिये सम्राट के

प्रकोष्ठ में आई।

सम्राट उसकी दशा देखकर अत्यन्त विह्वल हो उठे।

"यह तुम्हारी क्या दशा है, राजमहिषी ?" उन्होंने पूछा।

"कुणाल ने मेरा अपमान किया है, देव !"

"अपमान ?...." चौंक पड़े सम्राट।

"हाँ देव !...उसकी वासना का मैंने तिरस्कार इसलिए !"

"........."

क्रोध से भर कर उठ खड़े हुए सम्राट अशोक। मुट्ठी कमरे में इधर से उधर टहलने लगे। उनकी भंगिमा उद्दीप्त हो नेत्रों के लाल डोरे उभर आये। चौड़ा वक्ष तीव्र साँस के साथ बैठने लगा।

"राजमहिषी ?...क्या तुम सत्य कहती हो ?"

सम्राट ने पूछा।

"हाँ, सम्राटदेव !"

"........."

सम्राट पुनः कुछ सोचने लगे।

उनका क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

"सम्राटदेव ! मेरी दशा देखें..." राजमहिषी ने आहुति दी और सम्राटदेव का क्रोध भभक उठा। उन्होंने बढ़कर घण्टे पर मुँगरी दे मारी। परिचारिका उपस्थित हुई।

"युवराज कुणाल को यहाँ तुरन्त उपस्थित होने की दो...."

परिचारिका चली गई। सम्राट बेचैनी से टहलते रहे। वे तिष्यरक्षिता के सामने आकर खड़े हो गये। दृढ़ स्वर में "राजमहिषी ! तुमने आसव-पान किया है ?..."

"........."

तिष्यरक्षिता चुप रह गई।

"जाओ !...." गरजकर सम्राट बोले—"युवराज कुणाल ऐसा
ों हैं...जाकर अपने प्रकोष्ठ में अपनी अव्यवस्थित ःगिमा ठीक
ो...मेरे कान युवराज की कोई भी निन्दा सुनने को प्रस्तुत
ों...."

तिष्यरक्षिता सर झुकाकर चली गई।

युवराज ने जब सम्राट के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया तो सम्राट
म्भीर अवस्था में खड़े थे। युवराज उन्हें झुककर अभिवादन किया।
वराज को आश्चर्य हुआ, सम्राट की गम्भीरता देखकर। उन्हें तो यह
य था कि तिष्यरक्षिता ने सम्राट के कान भर दिये होंगे और सम्राट
उन्हें कदाचित् ताड़ना देने के लिये ही बुलवाया होगा, परन्तु यहाँ
ाकर उनका भय विलीन हो गया। सम्राट को उन्होंने सदैव की ही
ाँति गम्भीर देखा।

"अजकल क्या हो रहा है, युवराज ?...." सम्राट का प्रश्न था।

"साम्राज्य भर में स्थान-स्थान पर गाड़े जाने के लिए उपदेशपूर्ण
ालालेख तैयार किये जा रहे हैं, सम्राटदेव !..."

"ठीक है, अब तुम जा सकते हो...."



"देव ! भीषण वनस्थली में आ पहुँचे हैं, हमलोग..." कांचन-
ाला ने कहा।

"यथार्थ कहती हो, भद्रे !...." कुणाल बोले—"आखेट भी एक
निकृष्ट व्यसन है। देखो न, तभी तो बौद्धधर्म के अनुयायी और
अहिंसा परमोधर्मः' में विश्वास करने वाले हमलोग, आज कार्मुक
निषंग धारण कर आखेट करने आये हैं..."

"परन्तु देव,..." कांचन ने कहा—"हम लोग हिंसा कहाँ करते
? हम तो हिंसकों की हत्या करते हैं, व्याघ्र आदि भयानक जन्तु

निरीह वन्य-पशुओं के हिंसक हैं, यदि हम उन्हें मार कर की रक्षा करते हैं तो यह धर्म-विरुद्ध आचरण कैसे हुआ ?...."

युवराज और युवराज्ञी, दोनों उत्तम बहुमूल्य आखेटीय धारण किये हुए, सुन्दर अश्वों पर आरूढ़ थे। कटि से कृपाण रहा था। कन्धे पर कार्मुक था और पीठ पर निषंग ? दोनों आखेट को निकले थे।

"क्या देवी काँचनमाला थोड़ी देर तक विश्राम चाहेंगी ?..." युवराज ने पूछा।

"युवराजदेव की जैसी आज्ञा !..." कांचन ने अपनी प्रकट की। दोनों अश्वों पर से उतर पड़े। अश्वों को वृक्ष की में बाँध देने के पश्चात्, वे एक स्वच्छ शिलाखण्ड पर आकर बैठ

"आर्ये !...." युवराज बोले—"तुम व्यर्थ ही आखेट को दुर्गम वनस्थली में कंटकाकीर्ण मार्ग है और इन मार्गों पर जैसे पग नहीं चल सकते..."

"परन्तु देव ! क्या करूं ? अब आपको अकेला जी नहीं चाहता...." कांचन कहने लगी—"जबसे आपने माता राजमहिषी के वासनापूर्ण व्यवहार का वर्णन मुझसे किया से मेरा हृदय काँप रहा है...मैं किसी भावी अनिष्ट की बेचैन हो उठी हूँ..."

"भावी अनिष्ट ?"

"हाँ देव !....मैं जानती हूँ कि एक युवती अपनी वासना न कर सकने पर भयानक हो उठती है। राजमहिषी की ठोकर मार कर आपने उनका क्रोध उभार दिया है..."

"उसमें माता तिष्यरक्षिता का दोष नहीं था, कांचन युवराज बोले—"उस दिन उन्होंने आसव-पान किया था, उनके अवयव अव्यवस्थित हो उठे थे..."

"बौद्ध-साम्राज्य में आसव-पान करनेवाले को क्या आप

नते हैं, युवराजदेव ?...."

"नहीं देवी कांचनमाला !....परन्तु मानव-चरित्र दुर्बलता की
त पर ही तो निर्मित है...."

"देव में साहस अधिक हैं, इसलिए आप अपने ऊपर आनेवाली
त्ति पर ध्यान नहीं देते..." कांचन ने कहा।

"ध्यान देना भी नहीं चाहता, भद्रे !...." युवराज बोले—
ता तिष्यरक्षिता मेरे प्रति इतनी निष्ठुर नहीं हो सकती..."

"आप जानते हैं देव, कि आमात्यश्रेष्ठ के गुप्तचर कितने कार्य-
ल हैं—उन्हीं गुप्तचरों ने आमात्यश्रेष्ठ को यह समाचार दिया है
राजमहिषी तिष्यरक्षिता आप के प्राणों पर आघात करना चाहती
.."

"मुझे अपनी भुजाओं पर भरोसा हैं, देवी कांचन ! मैं अपनी
ा आप कर लूँगा...."

"यथार्थ है देव ...." कांचन बोली—"परन्तु आमात्यश्रेष्ठ वृद्ध
चले हैं, उनका अनुभव विस्तृत एवं गहन है, अतः आप उनकी
तें न मानकर जो आखेट को पधारे हैं, यह समयानुकूल नहीं कहा
सकता !"

"भद्रे !.. क्या तुम वनस्थली की भीषणता से घबड़ा गई
?..."

"देव के साथ मैं मृत्यु का भी आलिंगन कर सकती हूँ..." कांचन
कहा—"परन्तु तनिक इस बात पर ध्यान दीजिये कि हम लोग
तनी दूर आ गये हैं। सहचर भी सब पीछे छूट गये हैं। न जाने
हाँ होंगे वे ?"

कुछ क्षण तक निस्तब्धता रही। युवराज कुणाल और युवराज्ञी
ांचनमाला, मौन रहकर न जाने क्या सोचते रहे।

"भद्रे !..." युवराज बोले—"मुझे प्यास लगी है। तुम यही
, मैं उस वृक्षावलि के पार किसी जल-स्रोत की खोज करता

हूँ....''

''मैं भी देव के साथ चलूँ, क्या हानि है ?''

''तुम थकी हो....'' युवराज ने कहा—''कुछ क्षणों का तुम्हारे लिए उपयुक्त होगा....'' युवराज पैदल चल पड़े। देर में सघन वृक्षावलि ने उन्हें अपने आँचल में छिपा लिया।

कांचन अन्यमनस्क भाव से शिलाखण्ड पर बैठी रही।

युवराज के इस प्रकार अकेले जाने से वह सशंकित हो उठी वह युवराज को एक क्षण के लिए भी अपने से विलग नहीं चाहती थी। परन्तु युवराज के हठ से बाध्य होकर ही उसने अकेले ही जल-स्रोत की खोज में जाने दिया था।

थोड़ी देर तक कांचन चुपचाप बैठी रही। एकाएक पड़ी वह।

कुछ दूर से आती हुई तलवारों की झनझनाहट ने प्रकट दिया कि पास ही कहीं घमासान युद्ध हो रहा है।

उसे युवराज पर किसी संकट की आशंका हुई। वह तीव्र उठी। अभी दो-चार पग ही चली थी कि अकस्मात सैकड़ों व्यक्तियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

एक घण्टे बाद रक्तरंजित कृपाण हाथ में लिए, युवराज आये तो उन्हें देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि कांचन वहाँ नहीं है उसी शिला-खण्ड पर बैठकर विचारमग्न हो गये।

१०

अपने शयनकक्ष में स्वर्णपट्टिका पर आसीन राजमहिषी क्षिता और उनके सामने नतमस्तक खड़ा एक दीर्घकाय सशस्त्र

''रुद्रसेन !...'' तिष्यरक्षिता बोली—''मुझे अत्यन्त खेद तुम-सा कार्यकुशल व्यक्ति भी मेरा कार्य पूर्ण न कर सका।''

रुद्रसेन ने राजमहिषी के आगे सर झुकाया और बोला—

"साम्राज्ञी ! मैंने और मेरे अनुचरों ने यथासाध्य प्रयत्न किया। न्तु सफलता बहुत थोड़ी मिली...क्या थोड़ी-सी सफलता पर सन्तोष हीं किया जा सकता, राजमहिषी ?..."

"किया जा सकता है..." बोली तिष्यरक्षिता—"परन्तु मेरे दय का काँटा कुणाल का तो तुम कुछ कर नहीं सके और उठा लाये चनमाला को...."

"क्या करूँ, देवि ! कुणाल के कृपाण के आगे हमारे कृपाण ण्ठित हो गये..." रुद्रसेन ने कहा—"आखेट के समय हमने उनका छा करके वध करना चाहा था, परन्तु युवराज के हस्तालाघव के म्मुख हम लोग क्षुद्र हैं, ऐसा अनुभव हुआ हमें। हम लोग निराश कर कांचनमाला को उठा लाये।"

"ठीक है !..." श्रमपूर्ण श्वांस लिया तिष्यरक्षिता ने—"मेरे दय की ज्वाला शान्त करने के लिये कांचन ही पर्याप्त है। मैं कुणाल ो दुःख पहुँचाना चाहती हूँ। मैं हर तरह से उसे नष्ट करना ाहती हूँ...."

"तो क्या राजमहिषी देवी कांचनमाला का वध करवाना चाहती ?" पूछा रुद्रसेन ने।

"अवश्य ! अभी !"

रुद्रसेन सर झुकाकर कुछ सोचने लगा।

"कांचन को कहाँ बन्द कर रखा है, तुमने ?..." पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"आप के गुप्त बन्दीगृह में।" बोला रुद्रसेन।

"एक कार्य और करो और बहुत शीघ्र !..." धीरे से बोली तिष्यरक्षिता—"तुम गुप्तरूप से एक चाण्डाल को बुला लाओ—मैं इसी समय बन्दीगृह में चलकर, निर्मोही कुणाल की हृद्देवी को इस संसार से सदा के लिये उठा देना चाहती हूँ...."

यह भीषण बात सुनकर रुद्रसेन एक क्षण के लिये काँप उठा !

परन्तु वह विवश था। वह राजमहिषी का आज्ञाका[illegible] था। वह शयन-प्रकोष्ठ से बाहर चला गया और कुछ ही देर [illegible] दीर्घाकार, कृष्णकाय नग्न खड्गधारी चण्डाल को साथ लि[illegible] आया।

राजमहिषी तिष्यरक्षिता, रुद्रसेन और वह चाण्डाल, ती[illegible] बन्दीगृह में आये। परन्तु यह देकर उनके आश्चर्य का पार[illegible] रहा कि बन्दीगृह का ताला टूटा पड़ा है और कांचनमाल[illegible] नहीं है।

"क्या बात है, रुद्रसेन ?...." तिष्यरक्षिता ने पूछा।

"........."

रुद्रसेन तो जैसे प्रस्तरमूर्ति बन गया।

वह कुछ बोल ही नहीं सकता था कि कांचनमाला [illegible] कहाँ गई ?

"बोलो रुद्रसेन, कहाँ है कांचनमाला ?...'

"आश्चर्य है देवि !....अभी कुछ ही देर पहले मैं कांचन[illegible] को यहाँ बन्द करके गया हूँ, परन्तु इतनी ही देर में वह कैसे [illegible] गई ?..."

"क्या तुमने वास्तव में कांचनमाला को यहाँ ला रखा थ[illegible] तिष्यरक्षिता का हृदय शंकाग्रस्त हो गया।

"क्या राजमहिषी को मेरी सेवा के प्रति सन्देह उत्पन्न [illegible] गया है ?"

"नहीं रुद्रसेन...." तिष्यरक्षिता ने कहा—"तुम्हें सन्देह की [illegible] से देखना, स्वयं पर सन्देह करने के तुल्य है। फिर भी मैं अ[illegible] आश्चर्यचकित हूँ कि इस सुरक्षित तथा गुप्त बन्दीगृह से कांचन [illegible] प्रकार लुप्त हो गई ? जहाँ तक मेरा विश्वास है, स्वयं सम्राटदेव [illegible] इस बन्दीगृह के विषय में नहीं जानते..."

तीनों बन्दीगृह से लौटकर पुनः प्रकोष्ठ में आये। उसी

ाट का पायक वहाँ आ पहुँचा और उसने निवेदन किया—
म्राटदेव राजमहिषी को स्मरण कर रहे हैं..." काँप उठी
यरक्षिता ।

तो क्या सम्राटदेव अशोक को उसके षड़यन्त्र का पता चल
ा ? अवश्य चल गया होगा, तभी तो उसको बुलाने के लिए पायक
ा गया है । कांचन का गुप्त बन्दीगृह से लुप्त हो जाना, तिष्यरक्षिता
लिए अवश्य अनिष्टकारी सिद्ध होगा, यह विचार कर वह काँप
ी ।

"तुम सम्राटदेव से जाकर निवेदन करो कि मैं शीघ्र ही आ रही
..." तिष्यरक्षित ने पायक से काँपती स्वर में कहा । पायक चला
ा।

"रुद्रसेन !"

"आज्ञा राजमजहषी ?"

"क्या सम्राटदेव को हमारे षड़यंत्र का पता लग गया है ?"
तिण्यरक्षिता के स्वर में कम्पन था ।

"असम्भव है, साम्राज्ञी !...." रुद्रसेन बोला—"सम्राट को कुछ
ात न हुआ होगा..."

"परन्तु कांचन का निकल भागना प्रगट करता है कि उन्हें सब
छ ज्ञात हो गया है ।"

भाल पर हाथ रखकर सोचने लगा रुद्रसेन ।

"क्या में सम्राटदेव के समक्ष जाऊँ ?...." तिष्यरक्षिता ने पूछा ।

"जाइये ..." रुद्रसेन बोला—"मैं गुप्त-रीति से हमेशा आप के
ाथ रहूँगा । संकटकाल उपस्थित होते ही मैं अपनी जान पर खेल
ाऊँगा साम्राज्ञी, परन्तु आप पर आँच न आने दूँगा..."

"अच्छा तो मैं जाती हूँ "

"अवश्य जाइये । मुझे छाया की भाँति अपने पास समझियेगा ।
हाथों में कार्मुक और तीर प्रस्तुत रहेंगे..." रुद्रसेन बोला ।

शंकित हृदय लिए राजमहिषी तिष्यरक्षिता सम्राट अ[...] प्रकोष्ठ में आई। उसका हृदय धड़क रहा था—मुखाकृति म[...] गई थी।

सम्राट अशोक शांत खड़े थे। उनकी मुखाकृति पर तनि[क] क्रोध, तनिक भी मानसिक अशान्ति के चिह्न उसे दृष्टिगोचर नहीं [...]

"सम्राट ने मुझे बुलाने का क्यों कष्ट किया ? मैं तो थोड़ी [...] आने ही वाली थी।" कहा तिष्यरक्षिता ने।

स्वर उसका अब भी अव्यवस्थित था, परन्तु हृदय का भय [...] कुछ दूर हो चुका था। सम्राट को संयत देखकर।

"इसलिए कि..!" सम्राट बोले—"आज प्रातःकाल [...] तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन नहीं हुआ..."

सम्राट ने प्रेमपूर्वक तिष्यरक्षिता का हाथ पकड़कर अपने [...] पास खींच लिया।

"तो आप दिवाकाल में ही मुखचन्द्र अवलोकन करने को [...] थे...." मुस्कुराकर बोली तिष्यरक्षिता—"परन्तु चन्द्र के दर्[शन] रात्रि काल में होते हैं, देव !"

"........."

सम्राट कुछ न बोले। हँसकर उन्होंने तिष्यरक्षिता के [...] पुष्पों का मधुपान किया।

"युवराज आखेट को गया था...."सम्राट बोले—"थोड़[...] पहले वह वहाँ से आहत होकर लौटा है.." सुनकर चौंक [...] तिष्यरक्षिता। परन्तु बहुत प्रयत्न करके अपने को सम्हाला अ[...] "कैसे आहत हुए, युवराज ?"

"कदाचित् कुछ अज्ञात शत्रुओं से युद्ध करना पड़ गया था..." सम्राट ने कहा—"कांचनमाला का भी साथ कुणाल से छूट गया [...] और वह किसी कुचक्र में जा पड़ी थी..."

"कुचक्र ? .." आश्चर्यपूर्ण भंगिमा बनाकर बोली राजमहिषी [...]

कैसा कुचक्र ?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि राजनगर में कुछ देश-द्रोहियों की शक्ति ढ़ चली है और वे राजपुरुषों की हत्या करना चाहते हैं..." तनिक ककर सम्राट पुनः बोले—"उन्हीं लोगों ने कुणाल पर आक्रमण किया होगा और वही लोग कांचनमाला को पकड़ ले गये होंगे.... आमात्यश्रेष्ठ ने काँचनमाला को मुक्त किया, नहीं तो उसके प्राण संकट में पड़ गये थे ..."

सम्राट ने अपना वक्तव्य पूरा किया। "आमात्यश्रेष्ठ ने विद्रोहियों का कुछ पता बताया ?" राजमहिषी ने आतुरता से पूछा।

"नहीं, कुछ नहीं बताया उन्होंने..." सम्राट बोले—"परन्तु मेरा अनुमान है कि आमात्यश्रेष्ठ और कांचनमाला दोनों ही यह बात जानते है और वे विद्रोहियों का समूल विनाश करने का प्रयत्न करेंगे..."

"......"

काँप उठी तिष्यरक्षिता, परन्तु यह जानकर उसका भय कुछ कम हुआ कि अभी तक सम्राट उसके षड़यन्त्र का पता नहीं पा सके हैं। आमात्यश्रेष्ठ पर बहुत क्रोध आया तिष्या को, क्योंकि उन्होंने उसकी योजना को विफल कर दिया था। अब वह भविष्य में इस शैतान से सावधान रहेगी।

"देवी तिष्यरक्षिता !..." सम्राट बोले–"आज तुम अव्यवस्थित-सी क्यों दृष्टिगोचर हो रही हो !...तुम्हें कोई मानसिक अशान्ति तो नहीं है ?..."

'है क्यों नहीं देव ! युवराज के आहत होने तथा कांचनमाला पर विद्रोहियों के आक्रमण करने के समाचार ने, मेरे हृदय पर भी पर्याप्त पहुँचाया है...." तिष्यरक्षिता ने कहा।

"तुम्हारा हृदय अत्यन्त कोमल है, भद्रे !..." कहा सम्राट ने। परन्तु क्या वास्तव में उसका हृदय कोमल था ? क्या कभी न विष के जगह पर सुधारस उगल सकती है ? नागिन !

नागिन ही थी तिष्यरक्षिता। वह अपने पुत्र को नयनों से बाँधना चाहती थी—

परन्तु ठुकरा दिये जाने पर उसे नष्ट कर देने का दृढ़ लिया था उसने—युग-युग से दूध पीती नागिन, अब विष लिए प्रस्तुत थी।

युवराज अब तक उसकी प्रतिशोध-भावना के प्रति उ वे नहीं जानते थे कि जो सौन्दर्य का प्याला, एक दिन उनके पास आ गया था और जिसे विष समझकर उन्होंने पान अस्वीकार कर दिया था—अब वास्तव में विष बन गया है।

युवराज के हृदय में यह तनिक भी सन्देह नहीं हुआ भयानक वन में उनपर आक्रमण होने तथा कांचनमाला के जाने में तिष्यरक्षिता का हाथ है।

कांचनमाला को अकेली छोड़ जाने की भूल जो उन्होंने उसके लिये वे बहुत दुःखी थे, क्योंकि कांचन ही उनके जीवन आधार थी। अपना दुःख कलेजे में छिपाये, वे जब राजनगर लौट थे तो सम्प्रति ने उनका पाँव पकड़कर उनसे रुद्ध पूछा था—

"पिताजी ! ..माता जी कहाँ हैं ?...."

युवराज ने सम्प्रति को गोद में उठा लिया। अत्यन्त बोले—"अभी आ रही होगी, कुमार !..."

परन्तु कहते-कहते युवराज के नयनों में गंगा-यमुना उमड़ थी और शिशु सम्प्रति अपने पिता के हृदय का दुःख गया था।

युवराज सम्प्रति को गोद से उतार कर स्वर्णपट्टिका पर बैठे और न जाने किन विचारों में तल्लीन हो गये। लगभग दो तक वे उसी मुद्रा में बैठे रहे। तभी पायक ने आकर निवेदन किया

"देव ! आमात्यश्रेष्ठ पधारे हैं।"

"......!" युवराज ने संकेतात्मक स्वीकृति दे दी।

आमात्यश्रेष्ट आये तो उनकी भंगिमा अत्यन्त उद्दीप्त थी। परन्तु
ाज की दशा देखते ही वे चौंक पड़े। "युवराजदेव आहत हैं?..."
"हाँ, आमात्यश्रेष्ठ!...." युवराज ने व्यथित हृदय से वृद्ध
ात्यश्रेष्ठ को सारी कथा सुना दी। सुनकर वृद्ध आमात्य को अत्यन्त
हुआ। वे बोले—
"अभी-अभी मेरे गुप्तचर ने एक समाचार दिया है और उसी
य पर परामर्श करने के लिए मैं श्री युवराज के पास आया हूँ..."
"क्या हैं वह समाचार?" पूछा युवराज ने।
"यह की युवराज्ञी, राजमहिषी तिष्यरक्षिता के गुप्त बन्दीगृह में
ी हैं।"
"क्या कहते हैं, आप आमात्यश्रेष्ठ!..." चौंककर बोले युवराज
ाता तिष्यरक्षिता के बन्दीगृह में..."
'हाँ युवराजदेव, वृद्ध आमात्य से आपकी या राजमहिषी तिष्यरक्षिता
कोई बात गोपनीय नहीं। मुझे एक-एक घटना का पता है—मैं
भी जानता हूँ कि राजमहिषी आपके प्रेम से वंचित और निराश
कर आपके प्राणों की भूखी हो गई है..."
"......"
प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न होकर कुछ सोचने लगे युवराज
"मैं यह भी जानता हूँ कि यह प्रतिशोध-भावना एक दिन
ंकर रूप धारण करेगी और तब मौर्य साम्राज्य का सूर्य कदाचित
देव के लिये अस्त हो जायगा..."
"आमात्यश्रेष्ठ महोदय!...."युवराज बोले—"आपको सब कुछ
दित है। आप कृपया कांचनमाला को किसी प्रकार भी उस बन्दीगृह
मुक्त कीजिये ...."
"ऐसा ही होगा..." आमात्यश्रेष्ट बोले—"परन्तु इस कार्य के
मुझे श्री सम्राटदेव के पास जाना होगा और उनके समक्ष सारी
यथातथ्य निवेदन करनी पड़ेगी...."

"नहीं आमात्यश्रेष्ठ !..." युवराज उतावली के साथ "यह नहीं हो सकता...मैं नहीं चाहता कि एक तुच्छ कार्य सम्राटदेव के समक्ष माता तिष्यरक्षिता को अपराधिनी जाय..."

"आप भूल कर रहे हैं, युवराजदेव !"

"यह मौर्य साम्राज्य के मानापमान का प्रश्न है, राजमहिषी पर कलंक लगने से, क्या हम सब उस कलंक सकेंगे ?"

"......"

सर नीचा कर लिया आमात्यश्रेष्ठ ने ।

"मैं चाहता हूँ कि यह बात अत्यन्त गोपनीय रहे..." कहा—"आप प्रयत्न कर कांचनमाला को मुक्त कीजिये—ऐसा करें कि स्वयं माता तिष्यरक्षिता को भी यह ज्ञात न हो..."

"जो आज्ञा..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा और अभिवादन पश्चात् प्रकोष्ठ से बाहर हो गये । लगभग एक घड़ी के पश्चात् श्रेष्ठ कांचनमाला को साथ लिए आ पहुँचे । कांचन को युवराज की प्रसन्नता का वारापार न रहा ।

कुछ ही घण्टों के वियोग ने उनके मन-मस्तिष्क को दिया था । सम्प्रति दौड़कर अपनी माता से लिपट गया ।

"मैं बहुत आभारी हूँ, आदरणीय महामात्य !" युवराज कण्ठ से बोले—"कांचनमाला को छुड़ाकर आपने मुझे दिया है । आपके समक्ष नतमस्तक हूँ मैं..."

युवराज ने अपना मस्तक झुका दिया वृद्ध आमात्यश्रे समक्ष । आमात्यश्रेष्ठ ने आगे बढ़कर उन्हें हृदय से लगा लिया

"यह आप क्या कहते है, युवराजदेव ?....आप युवराज हैं । आपको शोभा नहीं देता..."

११

आज सम्राट अशोकवर्धन ने विराट सभा का आयोजन किया
राज्य के प्रधान कर्मचारी, नगर के श्रेष्ठ नागरिक तथा अन्य
मान्य सज्जन नागरिक उपस्थित हैं।

सम्राट स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन हैं।

युवराज कुणाल, आमात्यश्रेष्ठ तथा अन्य राज-परिवार के व्यक्ति
योग्य स्थान पर उपस्थित हैं। सन्निकट ही तक्षशिला से आया
खड़ा है।

"राजदूत !..." आमात्यश्रेष्ठ उठकर बोले—"क्या समाचार
ये हो ?"

राजदूत ने सर झुकाकर सम्मान-प्रदर्शन किया। बोला—
आमात्यश्रेष्ठ महोदय ! श्री सम्राटदेव की सेवा में मैं तक्षशिलाधीश
रा प्रेषित एक आवश्यक निवेदन-पत्र लेकर उपस्थित हुआ हूँ..."

"निवेदन-पत्र प्रस्तुत करो..." आमात्यश्रेष्ठ ने आज्ञा दी।

राजदूत ने भोजपत्र पर लिखा हुआ एक पत्र आमात्यश्रेष्ठ के
थ पर रख दिया।

आमात्यश्रेष्ठ ने सम्राट के समक्ष मस्तक झुकाया और ऊँचे स्वर
पढ़ने लगे—

माननीय मगधपति, मौर्यध्वज-धारक, भिक्षुगण-रक्षक, प्रियदर्शी
सम्राट अशोकवर्धनदेव के चरणों में तक्षशीलाधीश का कोटिशः
भिवादन !

श्रीसम्राटदेव के समक्ष यह व्यक्त करते हुए हमें अत्यन्त ग्लानि
अनुभव हो रहा है कि तक्षशिला के नगर निवासियों ने विद्रोह
रके हमारी सुख-शान्ति हरण कर ली है।

विद्रोह का कारण अज्ञात है, पर विद्रोह इतना प्रबल है कि
उसका प्रतिरोध करने में पूर्णतः असमर्थ हैं। यदि यही गति
तो तक्षशिला नगर पर विद्रोहियों का आधिपत्य अत्यन्त शीघ्र

हो जायगा। विद्रोह का संयोजक तथा उपद्रवियों का संचालक, गोप चन्द्रभाल है, जिसके नायकत्व में अनेकों बार विद्रोह हो चुका है विद्रोहाग्नि का दमन आवश्यक है, परन्तु यह हमारे वश की बा नहीं। हम सम्राटदेव से करबद्ध निवेदन करते है कि आप यहाँ पधारने का कष्ट करें और विद्रोह का शमन करें। बिना आपके पधा परिस्थिति शान्त नहीं हो सकेगी। हमें आशा है कि सम्राटदेव शीघ्र अपने पदार्पण का समाचार प्रेषित कर, हमें शान्त्वना प्रदान करें

तक्षशिलाधीश

आमात्यश्रेष्ठ पत्र समाप्त कर सम्राट के आज्ञा की प्रतीक्षा कर लगे। सारी राजसभा में सन्नाटा छा गया।

मौर्यसाम्राज्य में तक्षशिला, एक समृद्धिशाली प्रान्त था और व के निवासियों में अद्‌भुत वीरता तथा आत्मसम्मान की भावना थी।

वहाँ विद्रोह होने का समाचार सभी के लिए चिन्ता का विषय था सम्राट कोई समुचित मार्ग ढूंढ़ निकालने में तल्लीन थे।

"श्री सम्राटदेव की क्या सम्मति है?..." आमात्यश्रेष्ठ ने पूछा

"आमात्यश्रेष्ठ !"

सम्राट ने अपना मस्तक ऊपर उठाया।

"आज्ञा सम्राटदेव !"

"तक्षशिला नगर में विद्रोह की भावना अत्यन्त प्रबल हैं, तभी तो वहाँ बहुधा विद्रोह हुआ करते हैं..."

"सम्राटदेव का अनुमान वास्तविक है।"

"पूज्य पिता सम्राट विन्दुसारदेव के समय में भी वहाँ विद्रोह हुआ था। शमन स्वयं मैंने ही वहाँ जाकर किया था..."

सम्राट कुछ देर के लिए मौन हो गये।

"यह समाचार अत्यन्त चिन्ताजनक है।" आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

"ठीक कहते हैं आप, आमात्यश्रेष्ठ महोदय !...." सम्राट बोले- "मेरा जाना ही उचित होगा। बिना मेरे गये विद्रोहाग्नि का शमन असम्भव-सा प्रतीत होता है..."

"श्री सम्राटदेव ?..."

युवराज ने उठकर सम्राट के समक्ष मस्तक झुकाया।

"क्या है युवराज ?....क्या कुछ कहना चाहते हो तुम ?" सम्राट ने पूछा—"सम्राटदेव के तक्षशिला प्रस्थान से राजनगर पाटलीपुत्र उदासीन हो उठेगा..." युवराज बोले।

"तुम्हारा तात्पर्य ?..." सम्राट ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा युवराज कुणाल की ओर।

"तात्पर्य यह है कि सम्राटदेव को तक्षशिला प्रस्थान करने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं वहाँ जाकर परिस्थिति सम्हाल लूँगा और विद्रोहियों को उचित दण्ड दूँगा..."

"युवराज !..." सम्राट बोले—"राजनीति केवल बल-प्रयोग करने का आदेश नहीं देती....तुम अभी राजनीति से अनभिज्ञ हो, तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं। मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और देखूँगा कि विद्रोहीगण क्या चाहते हैं ?..."

"जो आज्ञा देव...."

कहकर युवराज कुणाल बैठ गये।

"आमात्यश्रेष्ठ !" सम्राट ने पुकारा।

"आमात्यश्रेष्ठ ने खड़े होकर अभिवादन किया।

"मेरी अनुपस्थिति में राज्य-संचालन का सारा भार आप पर रहेगा..." सम्राट ने कहा—"और राजाज्ञा, सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता प्रस्तुत करेंगी...."

आमात्यश्रेष्ठ का सारा शरीर सिहर उठा, सम्राट के मुख से यह सुनकर कि राजमहिषी तिष्यरक्षिता के आज्ञानुसार उन्हें आचरण करना पड़ेगा। सम्राट की अनुपस्थिति में तिष्यरक्षिता ही मौर्यसाम्राज्य की संचालनकर्त्री होगी।

"महाबलाधिकृत ?..."

महाबलाधिकृत ने उठकर सम्राट को अभिवादन किया।

"आप मेरे साथ तक्षशिला जाने के लिए दस सहस्त्र योद्धाओं का

प्रबन्ध करें....'' सम्राट बोले—''यद्यपि हिंसा में मेरी प्रवृत्ति नहीं फिर भी आत्मरक्षार्थ सैनिकों का साथ रहना आवश्यक है।''

''जो आज्ञा सम्राटदेव !''

सभा विसर्जित हुई तो सम्राट अशोक राजमहिषी तिष्यरक्षिता प्रकोष्ठ में आये।

तिष्यरक्षिता उस समय चिन्तित अवस्था में थी। तक्षशिला प्रबल विद्रोह होने का समाचार उसे मिल चुका था और वह यह जान चुकी थी कि स्वयं सम्राट अशोकवर्धन ही, विद्रोह के तक्षशिला प्रस्थान करेंगे। विद्रोह की भयंकरता वह जानती थी।

वह यह भी जानती थी कि वहाँ जाने से सम्राट के प्राणों भय है, क्योंकि विद्रोही प्रायः सम्मुख युद्ध नहीं करते—वे गुप्तरीति से घात करते हैं।

''राजमहिषी !''

सम्राट ने प्रेमपूर्वक तिष्यरक्षिता को उसके पार्श्व-भाग में कर उठाया।

''ओह !...सम्राटदेव !''

तिष्यरक्षिता का अवश शरीर सम्राट के विशाल वक्ष पर लुढ़क पड़ा। सम्राट ने उसे आवेष्ठित कर लिया।

''देवी तिष्यरक्षिता !....'' उन्होंने पुनः उसे हँसाने का किया।

''.........''

कुछ बोल न सकी वह ! कण्ठ में अटकी करुणा, अन्त में सिसकियाँ बनकर फूट निकलीं।

सम्राट ने उसे अपने बाहुओं में कस लिया।

''आर्ये !...'' वे बोले—''क्या दुःख है तुम्हें ?...तुम्हारे रुदन का क्या कारण है ?''

''.........''

''बोलो, भद्रे तिष्यरक्षिता !...''

बड़े प्रयत्न से तिष्यरक्षिता ने अपना अश्रुपूर्ण मुख ऊपर उठाया र अपने नयनों की सारी करुणा, सम्राट के नेत्रों में भर दी।

तिष्यरक्षिता का यह नाटकीय अभिनय अपूर्व था।

करुणामिश्रित मुखाकृति पर एक क्षण के लिए मदिर-मुस्कान की भा आकर पुनः विलीन हो गई।

"सुना है, तक्षशिला में विद्रोहाग्नि धधक उठी है..." तिष्य-क्षिता ने कहा। "हाँ देवी! तक्षशिला में मौर्यध्वज डगमगा हा है..."

"यह भी सुना है विद्रोह के शमन के लिए स्वयं सम्राटदेव हाँ प्रस्थान कर रहे हैं..."

"यथार्थ है आर्ये! मेरा जाना अनिवार्य है।" सम्राट ने कहा।

"परन्तु सम्राटदेव का विछोह मेरे लिये असह्य होगा..."

"मनुष्य की सहनशीलता अपरिमित है, देवी तिष्यरक्षिता!..." म्राट बोले—"वह मृत्यु-कष्ट तक सहन कर लेता है, विछोह-कष्ट सके समक्ष तुच्छ है...."

"देव को मेरे कथन पर अविश्वास हो रहा है?"

"नहीं राजमहिषी!....मेरा तात्पर्य यह है कि तुम विछोह-कष्ट हन कर सकती हो..."

"यह मेरे वश की बात नहीं, देव!..."

"तुम स्वार्थ की भावना से आक्रान्त हो, मेरे कर्तव्य को नहीं देख ही हो, सम्राज्ञी!..." सम्राट ने कहा—"विद्रोहियों ने मौर्य-ाम्राज्य की शक्ति को ललकारा है—और साम्राज्य के रक्षार्थ उस लकार का उत्तर देना अत्यावश्यक है..."

"प्रेम और साम्राज्य की तुलना में साम्राज्य को ही आप अधिक हत्व दे रहे हैं, मौर्यसम्राट!"

"तिष्ये!...." सम्राट प्रेमपूर्वक तिष्यरक्षिता को हृदय से लगा-कर बोले—"साम्राज्यवाद के अन्तर्गत प्रजावत्सलता की पावन भावना निहित है और वाह्य प्रेम हृदय की तुच्छ वासना का द्योतक है!"

"नहीं सम्राटदेव !..." तिष्यरक्षिता बोली—"
पीछे निरीह स्वतन्त्र देशवासियों को परतन्त्र बनाकर उन्हें करने की घृणित भावना निहित है, और प्रेम दो आसक्त स्वतन्त्रता का प्रतीक...."

"तुम भी विद्रोहिणी हो उठी हो, देवी तिष्यरक्षिता !..." बोले सम्राट।

"नहीं, कदापि नहीं...सत्य यह है कि सम्राटदेव के प्रस्थान का समाचार मेरे लिये मृत्यु-सा भयावह प्रतीत हो रहा

झर-झर आँसू बह चले तिष्यरक्षिता के नयनों से! जैसे हृदय की सारी करुणा पानी बनकर नेत्रों की राह से हो। सम्राट विचलित हो उठे। आँसुओं ने उन्हें मोम-सा दिया।

"तो क्या चाहती हो तुम, साम्राज्ञी ?...."पूछा सम्राट

"केवल यही कि आप तक्षशिला के लिये प्रस्थान न करें। तिष्यरक्षिता ने कहा।

"यह कैसे हो सकता है ?...विद्रोह का दमन करना है !... "सम्राट ने कहा।

"युवराज को भेजिये इस कार्य के लिए। वे विद्रोह का कर लेंगे..."तिष्यरक्षिता ने कहा।

तिष्यरक्षिता ने अपना प्रतिशोध लेने के लिए यही अवसर देखा। उसे विश्वास था कि तक्षशिला जाकर युवराज विद्रोह को शान्त न कर सकेंगे और विद्रोही उन्हें मृत्यु के घाट देंगे। इस प्रकार उसके रास्ते का कांटा सदैव के लिए जायगा।

आजकल तिष्यरक्षिता के हृदय में युवराज कुणाल के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी। अपना उबलता प्रेम ठुकरा दिये कारण वह युवराज से क्रोधित तो थी ही, इधर एक बात और हृदय को उद्वेलित करने लगी थी। वह यह कि युवराज

जीवित रहते, उसका पुत्र सम्राट कैसे बनेगा ? इन्हीं कारणों से वह युवराज का विनाश चाहती थी ।

सम्राट कुछ देर तक सोचते खड़े रहे, तत्पश्चात्—"ऐसा ही होगा साम्राज्ञी मैं तुम्हें दुःखी देखना नहीं चाहता..."

सम्राट ने परिचारिका को, युवराज को बुलाने की आज्ञा दी !

थोड़ी ही देर में युवराज आ उपस्थित हुए । उन्होंने झुककर माता और पिता के चरण छुए ।

"वत्स कुणाल !..." सम्राट ने कहा ।

"आज्ञा देव ?..." युवराज नतमस्तक होकर बोले !

"कुछ विशेष कारणों से, मेरा तक्षशिला जाना न हो सकेगा..."

"......."

"तुम कल प्रातःकाल तक्षशिला प्रस्थान करने की सारी तैयारी पूर्ण कर लो..."सम्राट ने आज्ञा दी ।

"जो आज्ञा, सम्राटदेव !"

"तुम तक्षशिला के प्रजापति बनकर जा रहे हो" सम्राट कहने लगे—"विद्रोह का शमन करने के पश्चात् उचित रीति से तब तक राजकार्य का संचालन करना, जबतक कोई दूसरा आदेश तुम्हें न प्राप्त हो...."

"..........."

युवराज ने सम्राट और साम्राज्ञी के सामने पुनः मस्तक झुकाया । तिष्यरक्षिता एकटक युवराज के सौन्दर्यपूर्ण मुख को देख रही थी । एक बार पुनः उसके हृदय में भूकम्प-सा हलचल उठ खड़ा हुआ । वह सारी विद्वेष-भावना भूलकर, युवराज के मादक नयनों की मदिरा पान कर रही थी ।

युवराज अभिवादन कर बाहर जाने लगे तो तिष्यरक्षिता भी साथ-साथ चली ।

एकान्त स्थान में आकर उसने युवराज का हाथ पकड़ लिया और वासनासिक्त स्वर में वह बोली ।

"युवराज....प्रिय कुणाल !" कहते हुए उसने युवराज का अपने सुपुष्ट वक्ष स्थल पर रख लिया।

युवराज को लगा जैसे उनकी हथेली को किसी ने हठात पकड़ कर आग पर रख दी हो। उन्होंने तेजी के साथ अपना हाथ खींच लिया।

"माता..."

"मुझे माता न कहो, मेरे प्यारे युवराज ! मुझे कहो...."

"सतीत्व की उपेक्षा नारी की उज्जवलता को कालिमामय देती है, माता तिष्यरक्षिता !" युवराज ने चेतावनी दी।

स्तम्भित-सी रह गई वह। युवराज जाने लगे तो वह बोली—"स्त्री की अतृप्त आकांक्षा प्रलय की सृष्टि कर देती है, इसे न भूलना..."

१२

युवराज कुणाल, पत्नी कांचनमाला और युवराज कुमार सम्प्रति, दस सहस्र वीर योद्धाओं के साथ तक्षशिला आ पहुँचे।

तक्षशिला की प्रजा ने उत्साह और उमंग से उनका स्वागत किया। युवराज तक्षशिला के विशाल प्रसाद के एक कक्ष में आये। उन्होंने तक्षशिलाधीश को सम्राट अशोक का आज्ञा-पत्र दिया जिसमें युवराज को तक्षशिला का प्रजापति बनाकर भेजा गया था।

दो प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी, जब युवराज और तक्षशिलाधीश के बीच विद्रोहियों के शमनार्थ, अनेक युक्तियों पर विचार-विमर्श आरम्भ हुआ। युवराज्ञी कांचनमाला भी वहाँ उपस्थित थीं।

"विद्रोहियों का नेतृत्व कौन कर रहा है, तक्षशिलाधीश ?"

"गोपक चन्द्रभाल उनका नेतृत्व कर रहा है, युवराजदेव !..." तक्षशिलाधीश बोले—"जो अपनी वीरता तथा नीतिकुशलता के लिये आस-पास के मण्डलों में अद्वितीय माना जाता है।"

"विद्रोह का कारण कुछ बता सकते हैं, आप ?"

"नहीं देव !...केवल अनुमान ही अनुमान है" तक्षशिलाधीश
।

"क्या अनुमान है, आपका ?..."

"शासनसत्ता के शिथिल बन्धन के ही कारण, विद्रोहियों को उठाने का साहस हुआ है, युवराजदेव !..."

"मैं आपके अनुमान से सहमत नहीं हूँ...." युवराज बोले— विचार है कि शासनसत्ता के कठोर बन्धनों से प्रजा पीड़ित उठी है और उनकी वह असह्य पीड़ा विद्रोहाग्नि का रूप धारण बैठी है।"

"क्या युवराजदेव के कथन का यह अभिप्राय है कि राजकर्म- ने प्रजा के अनुरूप कार्य नहीं किया है ?

"हाँ....मेरा तात्पर्य यही है।" युवराज बोले।

"........"

युवराज की स्पष्टोक्ति सुनकर तक्षशिलाधीश अप्रतिभ हो गया। लगा, जैसे युवराज उसका अपमान कर रहे हैं !

"प्रजा और शासक का सम्बन्ध प्रेमपूर्ण होना चाहिए"

पुनः बोले—"असहनीय व्यवहारों से प्रजा और शासक दोनों की हानि होती है....मैं शोषण-प्रवृत्ति से घृणा करता हूँ।"

"......" तक्षशिलाधीश के नेत्र लाल हो उठे, अपना अपमान
।

"मैं इस विद्रोह में शासक-मण्डल का ही अपराध देख रहा
..."

"क्या विद्रोहियों का कोई अपराध नहीं...?"

"उनका भी अपराध हो सकता है परन्तु इतना नहीं, कि उनपर रूप से ध्यान दिया जाय।"

"श्री युवराजदेव राजभक्त कर्मचारियों का अपमान कर हैं..." कठोर स्वर में बोला तक्षशिलाधीश।

"राजकर्मचारी प्रशंसा के पात्र नहीं हैं...." युवराज का स्वर तीव्र हो उठा—"नहीं तो प्रजामण्डल असन्तुष्ट होकर विद्रोह की न करता..."

"युवराजदेव !..."

"आप जा सकते हैं....आपकी बातों से मुझे विदित हो गया प्रजा के साथ दुर्व्यवहार हुआ है...मैं प्रजा में घुल-मिलकर उ दुःख का कारण मालुम करूँगा..." युवराज ने कहा।

हृदय में उमड़ते हुए क्रो कोध दबाकर तक्षशिलाधीश प्रकोष्ठ बाहर हो गया।

तक्षशिलाधीश के जाने के बाद, बहुत देर तक युवराज मग्न बैठे रहे। वे जान गये थे कि शासनसत्ता की छत्रछाया में होकर तक्षशिला के राजकर्मचारियों ने प्रजा के साथ अनुचित किया है और तभी प्रजा क्रोधित होकर मरने-मारने पर उतारू गई है।

"भद्रे ?..." युवराज ने कांचनमाला से कहा।

"आज्ञा !..."

"मैं आज रात्रि को साधारण वेशभूषा में नगर का प करूँगा...." युवराज कहने लगे—"तुम पार्श्व के प्रकोष्ठ में करना..."

"परन्तु नगर की स्थिति भयंकर हो रही है, देव !..." बोली—"ऐसी दशा में बाहर जाना उचित नहीं..."

"प्रजा में घुल-मिलकर उनके दुःख का पता लगाने से ही विद्रोह की शान्ति होगी, कांचन !....तुम मुझे भीरु न बनाओ....मुझे छद्मवेश में कोई पहचान न सकेगा..."

अर्द्धरात्रि का समय हो चला था कि युवराज कुणाल,

वस्त्र धारण कर राजप्रासाद से बाहर निकले।

इस समय वे राजकुमार नहीं, साधारण प्रजा थे। उनकी मुखा-का अधिकांश भाग साफे के छोर से ढँका था। कटिप्रदेश में एक तलवार लटक रही थी। कन्धे पर कार्मुक था। देखने में वे ग्रामीण प्रतीत होते थे।

प्रासाद के बाहर उनका एक विश्वस्त अनुचर, एक तगड़ा अश्व खड़ा था। युवराज अश्व पर जा चढ़े और धीरे-धीरे प्रासाद की क्रमा करने लगे। प्रासाद के पिछले भाग में आकर, अकस्मात् वे पड़े। उन्हें लगा, जैसे पास ही कहीं सैकड़ों मनुष्य छिपकर -धीरे बातें कर रहे हैं। युवराज घोड़े से उतर पड़े। अश्व को पेड़ से बाँधकर वे उस फुसफुसाहट के पास पहुँचे।

एक पेड़ की ओट में होकर उन्होंने देखा—

चहारदीवारी की ओट में सैकड़ों आदमी खड़े थे। सबके हाथों में कृपाणें दृष्टिगोचर हो रही थीं।

धीरे-धीरे उनमें बातें हो रही थीं—

"अब हम युवराज के प्रकोष्ठ के ठीक नीचे आ पहुँचे हैं..." एक रहा था—"तुम लोग यहीं ठहरो। मैं इस रस्सी के सहारे ऊपर ता हूँ और युवराज को समाप्त कर शीघ्र आता हूँ..."

"यह कार्य सरल नहीं है, गोपक चन्द्रभाल !"

"मैं जानता हूँ...." चन्द्रभाल बोला—"परन्तु अपने प्राणों के हम पीछे नहीं हटेंगे। युवराज सशस्त्र सेना लेकर हमारा दमन आये हैं। उनकी सेना से सम्मुख युद्ध में हम विजयी नहीं हो। मार्ग केवल एक है और वह यह है कि युवराज को मृत्यु के उतार कर हम निष्कण्टक हो जायँ..."

"आप ठीक कहते हैं...." दूसरे ने कहा।

"आप लोग यहीं रहें..." चन्द्रभाल ने कहा—"विपत्ति का मिलते ही मुझे संकेत द्वारा सूचित करना।"

इतना कहकर गोपक चन्द्रभाल रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ने ल
युवराज ने छिपे-छिपे उनकी सब बातें सुन ली थीं और यह भी
लिया था कि वे सब उनका प्राण लेने के लिए ही यहाँ आये हैं।

जहाँ युवराज इस समय खड़े थे, वहाँ से उनका और कांचन प्रकोष्ठ स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

युवराज ने कन्धे पर से अपना कार्मुक उतार कर हाथ में लिया और उसपर तीर चढ़ा, सजग होकर खड़े हो गये।

उनको आशंका हुई कि कदाचित् चन्द्रभाल उन्हें प्रकोष्ठ में पाकर बगल के प्रकोष्ठ में सोती हुई कांचनमाला पर आक्रमण कर दे।

अतः उन्होंने निश्चय कर लिया था कि ज्योहि वह कांचन प्रकोष्ठ में प्रवेश करने का प्रयत्न करेगा, वे तीर मार कर उसे ध शायी कर देंगे।

स्थिर दृष्टि से देख रहे थे, युवराज।

चाँदनी रात थी, तारों का अता-पता न था। चन्द्रभाल की छ कुछ अस्पष्ट ही सही, पर दिखाई पड़ रही थी।

चन्द्रभाल ऊपर पहुँच गया और युवराज के प्रकोष्ठ का द्वार से खोलकर भीतर प्रविष्ट हुआ।

परन्तु वहाँ कोई न था, अतः निराश होकर बाहर आया पार्श्व के प्रकोष्ठ के द्वार पर जा खड़ा हुआ।

उसके हाथ की नंगी तलवार चमक उठी।

नीचे खड़े हुए युवराज ने अपना कार्मुक कान तक खींच लिया

परन्तु चन्द्रभाल ने वह द्वार खोलने का प्रयत्न नहीं कि क्योंकि कपाट के छिद्र से मालूम हो गया कि युवराज भीतर नहीं है

अतः वह निराश होकर रस्सी द्वारा नीचे उतरने लगा।

परन्तु अभी वह आधी दूर ही उतर पाया था कि नीचे कोला सुनाई पड़ा।

न जाने कैसे प्रासाद के रक्षकों को विद्रोहियों का समाचार मि

गया था और उन्होंने उनपर प्रबल वेग से आक्रमण कर दिया था।

घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया।

नीचे उतरते-उतरते चन्द्रभाल रुक गया। उसने देखा—राज्य के सहस्रों सैनिक वहाँ आ पहुँचे हैं और उसके साथी उनके हाथों मृत्यु को प्राप्त हो रहें हैं। एक क्षण तक जाने क्या सोचता रहा चन्द्रभाल। तत्पश्चात मुख में नग्न कृपाण सम्भहाल और हाथ से रस्सी पकड़कर, दोनों पैरों के सहारे धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा।

अभी धरती थोड़ी दूर ही थी कि उसका युवक रक्त खौल उठा और वह नीचे कूद पड़ा। उसके हाथ का कृपाण वायुमंण्डल में विद्युत वेग से चमक उठा। अपने सरदार को देखकर विद्रोहियों का साहस दूना हो गया।

युवराज चुपचाप सब कुछ देख रहे थे।

उनके देखते-देखते एक-एक विद्रोही मान-रक्षार्थं कट मरा। विद्रोही सरदार गोपक चन्द्रभाल के समक्ष बच निकलने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रह गया।

सैनिकों ने उसका पीछा किया।

अन्त में जब चन्द्रभाल ने देखा कि वह भाग नहीं सकेगा तो पलट कर लड़ मरने को तैयार हो गया। हाथ की कृपाण विद्युत-सी चमक उठी।

गोपक चन्द्रभाल का हस्तलाघव और युद्ध-चातुर्य देखकर युवराज विस्मित हो उठे।

अन्त में युवराज ने देखा कि चन्द्रभाल बहुत आहत हो गया है और अब अधिक देर तक युद्ध करने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने क्षणमात्र में अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया और हाथ में कृपाण लेकर चन्द्रभाल के रक्षथं वे अपने ही सैनिकों पर टूट पड़े।

चन्द्रभाल ने उस नये सहायक को आश्चर्य से देखा और तब वह तीव्र वेग से कृपाण चलाने लगा।

युवराज युद्ध करते-करते चन्द्रभाल के निकट आ पहुँचे और धी से उससे बोले —"भद्र ! आप आहत हो गये हैं, यहाँ अधिक देर ठहरने से मृत्यु निश्चित है । पास ही मेरा अश्व खड़ा है । आइये, उ पर चढ़ कर भाग चलें"

अपने नवीन सहायक के प्रति चन्द्रभाल का हृदय कृतज्ञता भर गया । युवराज और चन्द्रभाल लड़ते-लड़ते घोड़े के पास आ गये युवराज ने सैनिकों को युद्ध में रत रखा और अवसर पाकर चन्द्रभा अश्व पर जा चढ़ा । उसके पीछे युवराज भी आरुढ़ हो गये । वेगवा अश्व, दो योद्धाओं का भार पीठ पर लिए वायु-सा उड़ चला ।

नगर के बाहर गोपक चन्द्रभाल का प्रासाद था । वहाँ पहुँचक युवराज ने चन्द्रभाल को धीरे से अश्व पर से उतारा । चन्द्रभा शिथिल हो रहा था । उसके शरीर पर सैकड़ों घाव थे ।

युवराज ने उसे सावधानी से शैय्या पर लिटा दिया और उस घावों पर पट्टी बाँधने लगे ।

"भद्र पुरुष !...." शिथिल स्वर में बोला चन्द्रभाल "आ तुमने मेरी प्राण-रक्षा की है....इसलिए मैं तुम्हारा अत्यन्त कृत हूँ...."

"आज आप घोर संकट में जा फँसे थे...."

"मेरे सैकड़ों साथी काल-कलवित हो गये, मैं भी अपने प्राण गं बैठता, यदि तुम समय पर न आ पहुँचते....कौन हो तुम वी युवक ?...."

"आपका तुच्छ सेवक और स्वतन्त्रता का प्रवल पुजारी...." युवराज ने कहा ।

"तुम्हारा नाम...."

"भानुगुप्त...." युवराज ने अविलम्ब उत्तर दे दिया ।

"यहाँ आने का कारण ?"

"देशभक्ति की प्रबल भावना और आपके दर्शन की तीव्र लाल ही मेरे यहाँ आने का कारण है !" युवराज ने कहा ।

"तुम अत्यन्त निर्भीक हो, भद्र पुरुष !....क्या तुम स्वतन्त्रता प्राप्त करने के इच्छुक हो ?...."

"निस्सन्देह !"

"साम्राज्यवाद की जड़ नष्ट करके सुख-शान्ति का उपभोग करना चाहते हो ?"

"..............."

"प्रान्त की स्वतन्त्रता के लिए त्याग और प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हो ?"

"अवश्य, गोपक महोदय !...."

"वीर युवक ! अद्भुत हो तुम...." चन्द्रभाल बोला—"तुम्हारा युद्ध-कौशल आज मैंने देखा है। तुम-सा शस्त्र-निपुण सहायक पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ...."

"मुझे भी कम प्रसन्नता नहीं है. श्रीमान् !"

"यह आपकी महानता है महाशय !...."

"तुमने मुझे प्राणदान दिया है...." चन्द्रभाल ने कहा—"क्या तुम इसका पुरस्कार चाहते हो ?"

"यदि आप दे सकें !"

"क्या चाहते हो ?"

"आपकी सहानुभूति !....आपकी मित्रता....!"

"मित्र भानुगुप्त !...." हर्षित हो बोला चन्द्रभाल—"आज से तुम मेरे अभिन्न मित्र हुए...."

"अब मैं आज्ञा चाहता हूँ, भद्र ! कल प्रातःकाल पुनः आपका दर्शन करूँगा। मेरी पत्नी प्रतीक्षा कर रही होगी...." युवराज ने कहा। "अच्छा !....तुम जा सकते हो...." युवराज बाहर आकर राजप्रसाद की ओर चल पड़े।

१३

दूसरे दिन गोपक चन्द्रभाल के निवास पर विद्रोही-संचालकों सभा हुई। प्रान्त के प्रायः दो सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे।

विद्रोहियों का अधिनायक गोपक चन्दभाल एक उच्च आसन आसीन था। ग्रामीण-वेश में युवराज कुणाल भी उपस्थित थे।

गोपक चन्द्रभाल ने युवराज को अपने बगल में आसन दि था। जब सभा में चारों ओर से निस्तब्धता छा गई तो चन्द्रभाल खड़ा हुआ। भरी सभा में कहने लगा वह—

"स्वतन्त्रता के मदमत्त पुजारियों! तुम्हारा स्वातन्त्र्य-प्रेम अ करणीय है। तुम्हारी हुँकार ने मौर्य साम्राज्य के सिंहासन को हिला दिया है, तभी तो विशाल वैभव त्याग कर युवराज कुणाल तक्षशिला आना पड़ा है...."

"............"

सुन रहे थे युवराज कुणाल।

"हमने पीड़ित और प्रताड़ित होकर अपना मस्तक उठाया है... चन्द्रभाल कहता गया—"हमने अपनी छातियों पर साम्राज्य वादियों की ठोकरें सहन की हैं—हम अन्याय, दुर्व्यवहार, दुराचा की चक्की के नीचे पिसते रहे, फिर भी शान्त रहे, परन्तु अब ह सोते रहे तो युवराज द्वारा सदा के लिये कुचल दिए जायेंगे। फि हमारा जीवन कीड़े-मकोड़े से भी निकृष्ट हो जायगा। इसीलिये ह इस बार प्रबलवेग से टक्कर लेना होगा। दोष सारा तक्षशिलाधी और उसके राजकर्मचारियों का है। इस बात के लिए हमारे पा पर्याप्त प्रमाण हैं...."

युवराज प्रतिक्षण गम्भीर होते जा रहे थे।

तक्षशिलाधीश के अन्याय की बात सुनकर दाँत पीस लगे युवराज

ा अन्याय के प्रजा विद्रोही नहीं हो सकती, वह उनका विश्वास
प्रमाणित हुआ था।

"हमारे पास राजकर्मचारियों के विरुद्ध यथेष्ठ प्रमाण हैं...."
क कह रहा था—"परन्तु उन प्रमाणों से क्या होता है ?" कौन
प्रमाणों के बल पर हमारे साथ न्याय करने को तैयार है....कौन
रे साथ घुल-मिलकर हमारी पीड़ा देखने को तैयार है....कोई
! युवराज कुणाल आये हैं, परन्तु न्याय करने नहीं, विशाल सेना
र देशभक्त विदोहियों का दमन करने आये हैं। हमें कीट-पतंग
झ लिया है उन्होंने...."

"..........."

पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी सभा में।

"..........."

मौन थे युवराज।

"परन्तु हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए अन्त तक युद्ध करते रहेंगे,
ंगे कदापि नहीं, हम क्रान्ति के अग्रदूत हैं...."

एक क्षण रुककर पुनः बोला चन्द्रभाल—

"कल की सभा में युवराज कुणाल की गुप्त हत्या करने का जो
ताव स्वीकृत हुआ था, वह बहुत प्रयत्न करने पर भी असफल
ा....हमारे बहुत से विश्वस्त साथी काम आये। मैं भी उस स्थान
मृत्यु का आलिंगन करता, यदि उसी समय यह वीर युवक भानुगुप्त
ी सहायता को न पहुँच जाता...."

चन्द्रभाल ने युवराज की ओर संकेत किया। हजारों दृष्टि,
भंगिमा से युवराज की तेजपूर्ण मुखाकृति पर जा पड़ी।

"भानुगुप्त की जय !...."विद्रोहीगण जयघोष कर उठे।

चन्द्रभाल पुनः कहने लगा—

"कल युवराज की हत्या करने की हमारी योजना असफल रही।
त्रुटिपूर्ण कारण यह था कि हम लोग सैकड़ों की संख्या में वहाँ
पहुँचे थे, जिससे राज्य-सैनिकों को संदेह होना स्वाभाविक था...."

"अब हमने युवराज की हत्या करने की एक नवीन युक्ति सो
निकाली है...." कहता रहा गोपक चन्द्रभाल—"वह यह कि
केवल एक व्यक्ति ही गुप्तरीति से युवराज की हत्या करने जायगा
यदि वह हत्या करने में सफल हुआ तो अत्युत्तम है और यदि पक
लिया गया तो केवल एक ही बलिदान होगा....अब विचार यह कर
है कि कौन व्यक्ति युवराज की हत्या करने का भार उठायेगा...."

"हम प्रस्तुत हैं, गोपक चन्दभाल ! हम सभी तैयार हैं...."

चारो ओर से कोलाहल मच गया।

युवराज शान्त एवं गम्भीर बैठे रहे।

"शांति !...." चन्द्रभाल चिल्लाया—"यह कार्य सरल नहीं
प्रिय बन्धुओं !....यह कार्य वही कर सकता है, जो राजप्रसाद के को
कोने से पूर्णतया परिचित हो और अत्यन्त निर्भय हो। बोलो, है को
ऐसा व्यक्ति ?....है कोई ऐसा वीर ?"

युवराज उठकर खड़े हो गये।

"मैं हूँ...."वे बोले। सारी सभा ने आश्चर्य से उनकी ओर देख

गोपक चन्द्रभाल हर्षनाद कर उठा—"मित्र भानुगुप्त ! तुम यु
राज की हत्या करोगे ?...."

"अवश्य !...."गम्भीर स्वर में बोले युवराज—"मैं जानता
कि मेरे अतिरिक्त और कोई व्यक्ति युवराज की हत्या नहीं
सकता..."

"धन्य हो भानुगुप्त ! धन्य हो..." गोपक चन्द्रभाल ने अप
कृपाण युवराज के हाथ में दे दिया।

"विद्रोही मित्रो !..." युवराज उच्च स्वर में बोले—"साम्राज्
वाद ने जो अन्याय किया है, उसके प्रति प्रतिशोध की भावना तुम्हा
दूरदर्शिता की परिचायक है..."

"............"

गोपक चन्द्रभाल एकटक युवराज कुणाल के उस हाथ की ओर दे
रहा था, जिसमें उन्होंने नग्न कृपाण की मूठ पकड़ रखी थी औ

उस हाथ की उँगलियों में बहुमूल्य हीरे की मुद्रिकाएँ चमक रही थी।

युवराज ने वस्त्र-परिवर्तन करते समय मुद्रिकाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था।

आश्चर्यचकित था चन्द्रभाल, एक ग्रामीण की उँगलियों में कई हीरक-मुद्रिकाएँ देखकर।

युवराज कह रहे थे—

"आज मुझपर विश्वास करके नायक ने मुझे युवराज की हत्या का भार सौंपा है....मैं उपस्थित बन्धुओं को निराश नहीं करूँगा। मैं अभी इसी समय, इसी स्थान पर युवराज की हत्या करूँगा...."

"..........."

"आश्चर्य से चन्द्रभाल ने युवराज के उन्नत ललाट की ओर देखा। "आपकी बातें आश्चर्यजनक हैं...." उपस्थित विद्रोहियों में से एक ने कहा। "अवश्य आश्चर्यजनक हैं...." कहकर युवराज ने नग्न कृपाण उठाकर अपने वक्ष पर तान लिया।

गोपक चन्द्रभाल ने दौड़कर युवराज का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण तक दोनों एक दूसरे के नेत्रों में देखते रहे।

"भद्र पुरुष !....कौन हो तुम ?...." चन्द्रभाल ने प्रश्न किया।

"स्वाधीनता का पुजारी,प्रजा का तुच्छ सेवक युवराज कुणाल...."

"युवराज कुणाल ?...."

गोपक चन्द्रभाल नतमस्तक होकर कुछ सोचने लगा।

सभा में कोलाहल का वातावरण व्याप्त गया। युवराज के रक्त की प्यासी तलवारें हवा में चमक उठी।

"तलवारें नीची कर लो...." तीव्र स्वर में आज्ञा दी चन्द्रभाल ने—"मैंने इन्हें मित्रता का वचन दिया है...."

"मैं प्रजा का सेवक हूँ...." युवराज बोले—"यदि प्रजा मेरी हत्या से सन्तुष्ट हो सकती है तो प्रजा में से कोई भी आकर मेरी हत्या कर सकता है...."

युवराज ने कृपाण पृथ्वी पर फेंक दी। युवराज की घोषणा ने को नत-मस्तक कर दिया। चंद्रभाल युवराज के चरणों पर गिर

"हमें क्षमा प्रदान करें, युवराजदेव ! आपकी सहृदयता से अनभिज्ञ थे।"

युवराज ने गोपक को उठाकर हृदय से लगा लिया।

बोले—"मित्र चन्द्रभाल ! मुझे अत्यन्त दुःख है कि हमारे चारियों ने प्रजा को पीड़ित किया। हम इसके लिए अपनी प्रजा हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हैं...."

युवराज ने प्रजा के समक्ष घुटने टेक दिये।

"युवराजदेव की जय ! मौर्यकुलभूषण की जय...."

सभा चिल्ला उठी।

"प्रिय प्रजाजनों !" युवराज बोले—"मैं तक्षशिला का बनाकर भेजा गया हूँ। मैं आप लोगों के कष्टों का पूर्णरूप से निवारण करूँगा और अपराधियों को समुचित दण्ड दूँगा। मैं आप लोगों प्रत्येक अधिकार सुरक्षित रखूँगा। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझपर विश्वास रखें और विद्रोह की भावना त्याग दें, इससे मुझे वास्तविकता को जानने और समझने का अवसर मिल सकेगा।

"हमें आप पर विश्वास है...."

हाथ ऊपर उठाकर उपस्थित समुदाय ने आश्वासन दिया।

"गोपक चन्द्रभाल !...." युवराज बोले—"कल मैं एक वृहत पौर सभा का आयोजन करूँगा। राज्यकर्मचारियों के विरुद्ध तुम्हारे पास जो भी प्रमाण हों, उनके साथ तुम्हारी उपस्थिति अनिवार्य है मैं प्रजा का उचित न्याय करूँगा !...."

"जो आज्ञा युवराजदेव !...."

तक्षशिलाधीश ने जब यह सुना कि युवराज कुणाल, उसके साथ अन्य कर्मचारियों पर आरोपित अभियोगों के विचारार्थ, पौर-सभा का आयोजन कर रहे हैं, तो उसे अत्यन्त क्रोध चढ़ आया—

परन्तु वह कर ही क्या सकता था ?

दूसरे दिन—

बृहद पौर-सभा एकत्रित हुई।

नगर के सभी प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे।

युवराज कुणाल, कांचनमाला, गोपक चन्द्रभाल, तक्षशिलाधीश आदि यथायोग्य आसनों पर बैठे थे। अन्त में सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

गोपक चन्द्रभाल ने अकाटय प्रमाणों द्वारा तक्षशिलाधीश को अपराधी प्रमाणित किया। तक्षशिलाधीश ने स्वयं पर आरोपित अपराध के स्पष्टीकरण में जो प्रमाण उपस्थित किये, वे मिथ्या एवं अनर्गल सिद्ध हुए। तक्षशिलाधीश तथा अन्य राज्य-कर्मचारियों पर अपराध प्रमाणित हो गए। युवराज खड़े होकर बोले—

"प्रजाजनो! आपने अकाटय प्रमाणों द्वारा राजकर्मचारियों का अपराध प्रमाणित किया है, परन्तु ये कर्मचारी सम्राटदेव द्वारा मनोनीत हैं, अतः इन्हें दण्ड देने का अधिकार मुझे नहीं हैं। मैं आज उनके अपराधों का पूर्ण विवरण लिखकर सम्राटदेव से न्याय के लिए प्रार्थना करूंगा। तब तक के लिए राज्यकार्य पूर्ववत चलता रहेगा। प्रजा के कष्ट का हम ध्यान रखेंगे...."

सभा विसर्जित हुई। युवराज ने तक्षशिलाधीश आदि के अपराध के विषय में सम्राट को पत्र लिख दिया। युवराज ने प्रजा का हृदय तो जीत लिया परन्तु राजकर्मचारियों के हृदय में घृणा की सृष्टि कर दी।

१४

आज पाटलीपुत्र राजप्रसाद अत्यन्त उदास दृष्टिगोचर हो रहा है। सभी प्रकोष्ठ एक प्रकार की भयानक नीरवता से आक्रान्त हैं।

परिचारिका तथा परिचारिकाएं, सभी के मुख पर चिन्ता के लक्षण प्रतिबिम्ब हो रहे हैं।

सम्राट अशोक के शयन-प्रकोष्ठ के द्वार पर भीड़ लगी है। चिन्तातुर मुद्रा धारण किये हुए राजमहिषी तिष्यरक्षिता भी द्वार पर खड़ी हैं।

एकाएक शयन-प्रकोष्ठ के द्वार खुले। पाटलीपुत्र नगर के चिकित्सक, विषगशिरोमणिन्न्यम्बक गुप्त बाहर निकले।

राजमहिषी ने शीघ्रता से उनके पास आकर पूछा—'की अब कैसी दशा है, भिषगशिरोमणि ?...."

त्र्यमस्वक गुप्त ने गम्भीरता से मस्तक हिलाया। बोले—"अवस्था शोचनीय है, राजमहिषी !"

"कोई आशा ?"

"श्वांस के साथ आशा की डोर बँधी है, साम्राज्ञी !...."

गुप्त बोले—"मैंने निदान करके औषधि दे दी है। सम्राटदेव उपचार में कोई त्रुटि नहीं होने दूँगा....आप विश्वास रखें।"

कहकर चले गये त्र्यम्बक गुप्त।

सम्राट अशोकवर्धन एकाएक आज रात में अस्वस्थ हो गये थे। थोड़ी ही देर में अवस्था इतनी शोचनीय हो गई कि आमात्यश्रेष्ठ, राजमहिषी आदि उनके जीवन से निराश हो गये।

अभी युवराज कुणाल को तक्षशिला गये केवल दो ही दिन व्यतीत हुए थे।

आमात्यश्रेष्ठ ने युवराज कुणाल को सन्देश भेजकर बुलाना चाहा, परन्तु तिष्यरक्षिता ने आज्ञा नहीं दी। कई दिन व्यतीत हो गये।

सम्राट का रुग्ण शरीर मृत्यु और जीवन के संघर्ष के मध्य झूलता रहा। उनकी दशा तनिक भी नहीं सुधरी।

आमात्यश्रेष्ठ तथा अन्य राज्यभक्त कर्मचारी घबड़ा उठे थे, परन्तु प्रसिद्ध औषधि-विशेषज्ञ भिषगशिरोमणि त्र्यम्बक गुप्त उन लोगों को धैर्य रखने का परामर्श दे रहे थे। उनका विश्वास था कि वे अपनी औषधि द्वारा सम्राट को मृत्यु के मुख में न जाने देंगे। उनकी

...कारिक औषधियाँ एक-न-एक दिन सम्राट को अवश्य ही स्वस्थता ...न करेंगी।

सम्राट के रुग्ण होने से साम्राज्य का सारा कार्य तिष्यरक्षिता के आदेश से सम्पन्न होने लगा। साम्राज्य भर में उनकी आज्ञा प्रसारित हो गई। नये-नये राजकीय नियमों से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। परन्तु तिष्यरक्षिता!

जो एक दिन धूल बनकर पैरों पर लोटती थी, आज मस्तक का चन्दन बन गई थीं। जो एक दिन मार्ग की तुच्छ कंकणी थी, आज मौर्यसाम्राज्य के कण्ठ की मणिमाला हो रही थी। उसे प्रजा के सुख दुःख से क्या प्रयोजन! कुछ ही दिनों में वह प्रजा के हृदय पर भयंकर त्रास बनकर छा गई। एक दिन—

अपने प्रकोष्ठ में बैठी हुई तिष्यरक्षिता, साम्राज्य-सम्बन्धी कितने ही आदेश-पत्र लिख रही थी, कि....उसी समय परिचारिका ने भीतर प्रवेश कर सिर भुकाया।

"क्या है...." पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"साम्राज्ञी! तक्षशिला नगर से आवश्यक पत्र लेकर कोई राजदूत आया है। युवराज कुणालदेव का वह कोई सन्देश लाया है...." परिचारिका ने कहा।

"उपस्थित करो...."

राजमहिषी ने आज्ञा दी। दो क्षण के पश्चात् प्रकोष्ठ में राजदूत ने प्रवेश किया। राजमहिषी के समक्ष नतमस्तक होकर सादर अभिवादन किया उसने और तब युवराज कुणाल का लम्बा पत्र तिष्यरक्षिता के हाथ पर रख दिया।

"युवराज तो सकुशल हैं?" पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"जी साम्राज्ञी! युवराज ने बुद्धि-चातुर्य से विद्रोह का शमन कर दिया है...." राजदूत ने कहा।

"विद्रोह का शमन—विद्रोह का शमन हो गया क्या?...."

राजमहिषी को सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

उसको विश्वास था कि तक्षशिला का विद्रोह कदापि शान्त न होगा और युवराज कुणाल विद्रोहियों के हाथों अवश्य मारे जायेंगे।

और यही वह चाहती भी थी—

परन्तु विद्रोह के सरलतापूर्वक शमन हो जाने के समाचार ने उसकी सारी आशाओं पर तुषारापात कर दिया। वह चिन्तित हो गई। उसकी प्रतिशोधाग्नि और भी प्रबल हो उठी। असफलता का आघात मनुष्य की प्रवल अकांक्षा को और भी उद्दीप्त कर देती है। तिष्यरक्षिता विक्षिप्त-सी हो उठी। वह दाँत पीस कर रह गई।

"पत्र का अवलोकन करें...." राजदूत ने कहा—"स्वयंमेव सब कुछ प्रकट हो जायगा, राजमहिषी !"

"............"

न जाने क्या सोचती रही तिष्यरक्षिता। कुछ वोली नहीं। तत्पश्चात् युवराज का पत्र खोल लिया और पढ़ने लगी। लिखा था—

"मगधाधिपति, प्रियदर्शी, प्रजावत्सल श्री मौर्यसम्राट के चरणों में कुणाल का सष्टांग प्रणाम !

सम्राट को विदित हो कि मैंने युक्ति द्वारा विद्रोह का शमन कर लिया है। अब नगर में पूर्ण शान्ति है। विद्रोहियों का नायक गोपक हमारा मित्र बन गया है !

मुझे संदेह था कि राज्य-कर्मचारियों द्वारा प्रजा पर अत्याचार हुआ है और इसीलिए पीड़ित प्रजा ने इस विद्रोह की सृष्टि की है। सत्यासत्य ज्ञात करने के लिए मैंने एक पौर सभा की। पौर सभा में प्रजा के कर्णधार, राजकर्मचारियों द्वारा आरोपित अपराधों का कोई संतोषजनक उत्तर न दे सके और न कोई स्पष्टीकरण ही कर सके।

मैं अपराधियों और अपराधों का संक्षिप्त विवरण भेज रहा हूँ। सम्राटदेव कृपापूर्वक उसे अवलोकन करें और आज्ञा दें कि शांतप्रिय

प्रजा को सताने के अपराध में, अपराधियों को कौन-सा दण्ड दिया जाय ?

सम्राटदेव का आज्ञाकारी प्रजापति—
युवराज कुणाल।

इसके आगे गोपक चन्द्रभाल द्वारा उपस्थित अभियोग और तक्षशिलाधीश और कर्मचारियों द्वारा स्पष्टीकरण की तालिका थी।

सब कुछ पढ़कर तिष्यरक्षिता ने एक लम्बी साँस ली।

"साम्राज्ञी, मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

राजदूत ने पूछा।

"तुम एक मास तक पाटलीपुत्र में विश्राम करोगे...." तिष्यरक्षिता ने कहा—"मैं आवश्यक आज्ञा अपने दूत द्वारा युवराज के पास तक्षशिला भेज दूँगी...."

"जो आज्ञा राजमहिषी !...."

"राजदूत मस्तक झुकाकर प्रकोष्ठ के बाहर चला गया।

राजदूत के चले जाने के पश्चात्, बहुत देर तक तिष्यरक्षिता विचार-मग्न बैठी रही। युवराज के विनाश का कोई नया मार्ग सोचती रही वह। उसी समय परिचारिका ने पुनः प्रवेश किया।

"क्या है ?...." उसने साश्चर्य पूछा।

"राजमहिषी की सेवा में, तक्षशिला से आया हुआ तक्षशिलाधीश का संदेशवाहक उपस्थित है—साम्राज्ञी का दर्शनाभिलाषी है...." परिचारिका ने कहा।

"उपस्थित करो ?"

राजमहिषी ने आज्ञा दी।

उसे महान आश्चर्य हो रहा था, तक्षशिला से दूसरे राजदूत का आगमन सुनकर।

संदेशवाहक आया। राजमहिषी को सादर अभिवादन कर वह बोला—

"तक्षशिलाधीश ने साम्राज्ञी की सेवा में यह पत्र देकर सविनय निवेदन किया है कि युवराजदेव ने राजकर्मचारियों के प्रति अत्यन्त अपमानजनक व्यवहार किया है और निकृष्ट विद्रोहियों से साँठ-गाँठ कर, वे राज-भक्त कर्मचारियों को दण्ड दिलाना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में उनका पत्र सम्राटदेव के पास पहुँच चुका होगा...."

संदेशवाहक ने कहा और एक पत्र तिष्यरक्षिता के हाथ पर रख दिया। तिष्यरक्षिता ने जब पत्र पढ़ा तब और भी चिन्ता व्याप्त गई उसे।

"यह पत्र तक्षशिलाधीश ने स्वयं मुझे देने के लिए कहा था?...." पूछा तिष्यरक्षिता ने।

"जी, राजमहिषी!...." संदेशवाहक बोला—"तक्षशिलाधीश ने मुझे आज्ञा दी थी कि मैं केवल आपके कर-ककलों में ही यह पत्र दूँ और तक्षशिलाधीश की प्राण-रक्षा के लिए साम्राज्ञी से प्रार्थना करूँ...."

"क्या तक्षशिला को यह विश्वास था कि मैं उनकी सहायता कर सकूँगी?" तिष्यरक्षिता ने पूछा।

"जी राजमहिषी!...." संदेशवाहक बोला—"उनका विश्वास है कि यदि कोई उनकी रक्षा कर सकता है और युवराज से उनके अपमान का प्रतिशोध ले सकता है, तो वह साम्राज्ञी ही...."

"इस विश्वास का कारण?"

आश्चर्य हुआ राजमहिषी तिष्यरक्षिता को।

"साम्राज्ञी मुझे अभयदान दें तो मैं निवेदन करूँ...." संदेशवाहक ने नतमस्तक होकर कहा।

"निर्भय होकर निवेदन करो...." राजमहिषी ने आज्ञा दी।

"युवराज से प्रतिरोध लेने की जो भावना साम्राज्ञी के हृदय में विराजमान है, उसका पता तक्षशिलाधीश को है। उन्हें राजमहिषी और युवराजदेव के मध्य हुई प्रत्येक घटनाएँ विदित हैं...."

चौंक पड़ी तिष्यरक्षिता।

जिस बात को वह गोपनीय, अत्यन्त गोपनीय समझती थी, वह क्षशिलाधीश के पास सुदूर प्रांत में कैसे पहुँच गई ?

"इस बात से साम्राज्ञी को आश्चर्य होगा...." राजदूत बोला—कि किस प्रकार तक्षशिलाधीश के पास आपकी गुप्त बातें जा पहुँची ....उस विषय में,मैं साम्राज्ञी से निवेदन करूँगा कि तक्षशिलाधीश के गुप्तचर अत्यन्त कार्य-पटु हैं...."

"..........."

चुपचाप सुनती रही तिष्यरक्षिता !

मैं राजमहिषी की सेवा में तक्षशिलाधीश का यह संदेश भी कहने का साहस करता हूँ कि यदि साम्राज्ञी को युवराजदेव के विरुद्ध किसी गुप्त-षडयन्त्र की सृष्टि करनी हो तो वे उसमें पर्याप्त सहायता दे सकते हैं, क्योंकि उनके हृदय में भी युवराजदेव के प्रति असीम घृणा है...."

"मैं इस बात पर विचार करूँगी। तुम जाकर विश्राम करो...."

राजमहिषी ने आज्ञा दी !

अभिवादन कर संदेशवाहक चला गया।

राजमहिषी ने परिचारिका को बुलाने के लिए घण्टे पर मुँगरी मारी परिचारिका उपस्थित हुई।

रुद्रसेन तिष्यरक्षिता का प्रधान सहायक और वीर सैनिक था।

"आओ रुद्रसेन !...." तिष्यरक्षिता बोली—"तुम्हारी प्रतिक्षा कर ही रही थी मैं...."

"मैं साम्राज्ञी की सेवा में उपस्थित हूँ...." रुद्रसेन बोला—"क्या सम्राटदेव की अवस्था चिन्ताजनक है...."

"नहीं रुद्रसेन !....उनकी अवस्था चिन्ताजनक होने से मुझे क्या चिन्ता है ?....मैं तो यही चाहती हूँ कि वे सदैव अस्वस्थ रहें और राज्य का शासन-सूत्र मेरे हाथों में बना रहे...." तिष्यरक्षिता बोली !

"मेरे लिए क्या आज्ञा है, राजमहिषी !...."

"युवराज से प्रतिशोध लेने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है...."

"मैं उस अवसर से लाभ उठाने को प्रस्तुत हूँ, साम्राज्ञी ! आप आज्ञा दीजिये...." रुद्रसेन ने कहा।

"देखो...." तिष्यरक्षिता कहने लगी—"युवराज ने तक्षशिला जाकर विद्रोह को शान्त कर दिया है और विद्रोहियों से मिलकर तक्षशिलाधीश का अपमान किया है। अतः वह भी मेरी सहायता करने को प्रस्तुत है—इस समय राज्य का शासन प्रबन्ध मेरे हाथों में है और सम्राट की ओर से आज्ञा देने का मुझे अधिकार प्राप्त है...."

"आप करना क्या चाहती हैं, साम्राज्ञी ?"

"मैं युवराज पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर उसके लिए कठोर राजदण्ड की आज्ञा प्रेषित करूँगी....इस प्रकार युवराज का विनाश और तक्षशिलाधीश का मनोरथ पूर्ण होगा।"

"ठीक है राजमहिषी !...." रुद्रसेन बोला—"तो क्या मुझे आज्ञापत्र लेकर तक्षशिला जाना होगा ?"

"अवश्य !"

"मैं जाने को प्रस्तुत हूँ....आपका पत्र किसे देना होगा ?"

"तक्षशिलाधीश को...."

"क्या कहूँगा उनसे ?"

"कहना है कि वे इस आज्ञा-पत्र के अनुसार युवराज को दण्ड देने की व्यवस्था करें...."

"परन्तु साम्राज्ञी !...." रुद्रसेन ने कहा—"यदि युवराज कुणाल उस आज्ञा-पत्र के अनुसार दण्ड स्वीकार न करें तो उनके विरुद्ध बल-प्रयोग कौन कर सकेगा ? वे स्वयं महान् वीर हैं। उनके लिये उनकी सेना का प्रत्येक सैनिक मर मिटने को प्रस्तुत रहता है ! इसके अतिरिक्त विद्रोहियों की शक्ति भी उनके पक्ष में हैं...."

"रुद्रसेन !..." तिष्यरक्षिता बोली—"आज्ञा-पत्र पर स्वयं सम्राट की मुद्रिका अंकित रहेंगी तो युवराज यही समझेंगे कि यह आज्ञा यं सम्राट की दी हुई है, वे वह दण्ड स्वीकार करने के लिए तुत हो जायेंगे...उनकी पितृभक्ति सर्व-साधारण पर विदित है, सेन !"

"यथार्थ है साम्राज्ञी ..."

रुद्रसेन ने कहा—

तिष्यरक्षिता ने एक आज्ञा-पत्र लिखा और उसपर सम्राट की मुद्रा ंकित कर दी। तत्पश्चात् वह पत्र रुद्रसेन को दे दिया। रुद्रसेन ने, सी दिन द्रुतगामी रथ द्वारा तक्षशिला की ओर प्रस्स्थान किया।

१६

गोपक चन्द्रभाल कई ग्रामों का स्वामी था। उसकी विशाल अट्टा का को देखकर सहज ही उसके वैभव का आभास मिल जाता था।

आज कई दिन से युवराज कुणाल, युवराज्ञी कांचनमाला तथा वराज कुमार सम्प्रति, गोपक चन्द्रभाल के अतिथि थे। चन्द्रमाल ने वराज परिवार के स्वागत में तनिक भी त्रुटि नहीं होने दी थी। वराज गोपक की आत्मीयता देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे वे। हर्षोल्लास दिवस व्यतीत हो रहे थे। नगर का सारा कार्य तक्षशिलाधीश देख हा था, जिस प्रकार वह पहले देखा करता था। परन्तु वह सदैव इस वसर की प्रतीक्षा में रहता था कि कैसे और किस प्रकार वह युव-ाज को लांछित एवं अपमानित करे।

दैवयोग से अभीतक उसे ऐसा कोई अवसर नहीं मिल सका था। क्षशिलाधीश की प्रतिशोधाग्नि दिन प्रतिदिन तीव्र रूप से भभकती ा रही थी।

उस दिन—

युवराज कुणाल और गोपक चन्द्रभाल सुसज्जित प्रकोष्ठ में बैठे

हुए परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। युवराज्ञी काञ्चनमाला सम्प्रति, पास के वन-प्रांत में विचरण करने चले गये थे।

"सम्राटदेव के पास युवराजदेव का राजदूत बहुत दिन पहले चुका है, परन्तु सम्राटदेव ने अभी तक अपराधियों को कोई दण्ड का आज्ञापत्र नहीं भेजा?" गोपक चन्द्रभाल ने अपनी शंका प्रकट की

"विलम्ब तो बहुत हुआ ..." युवराज बोले—"अवश्य कोई विशेष कारण होगा...कदाचित् सम्राटदेव राज्यकार्य में व्यस्त रहने के कारण अब तक अपराधियों के विषय में कुछ न कर सके होंगे?..."

युवराज को अब तक यह नहीं मालूम था कि सम्राट मृत्युशैया पर पड़े हैं और साम्राज्य का सारा कार्य निष्यरक्षिता संचलित हो रहा है।

"युवराज देव का अपराधियों के दण्ड-विधान के विषय में अनुमान है "

"इस विषय में मैं कुछ भी अनुमान नहीं लगा सकता, चन्द्रभाल! यह विषय सम्राटदेव की विचारधारा पर निर्भर है..." युवराज ने कहा।

"हमारे सम्राटदेव न्यायप्रिय हैं..." चन्द्र भाल बोला—"प्रजा के प्रति दुर्व्यवहार करनेवालों को वे समुचित दण्ड देंगे..."

"मुझे भी यही आशा है..." युवराज ने कहा।

उसी समय पायक ने प्रवेश कर मस्तक झुकाया।

"क्या है?...." चन्द्रभाल ने पूछा।

पायक कुछ घबराया हुआ-सा दृष्टिगोचर हो रहा था।

"क्या हुआ? साफ साफ कहो..." चन्द्र भाल ने आज्ञा दी।

"तक्षशिलाधीश ने कई सहस्त्र सैनिकों की सहायता से यह अट्टालिका चारों ओर से घेर ली है...."

चन्द्रभाल ने युवराज की ओर देखा।

"..........."

और युवराज ने चन्द्रभाल की ओर। चन्द्रभाल ने पुनः युवराज ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। परन्तु तक्षशिलाधीश के इस आकस्मिक आक्रमण का तात्पर्य वे दोनों न समझ सके।

तक्षशिलाधीश का यह साहस ?

युवराज का हाथ कृपाण की मूठ पर जा पड़ा।

वे बाहर जाने के लिए प्रकोष्ठ के द्वार की ओर लपके—परन्तु चन्द्रभाल ने उन्हें रोक लिया। "आप यहीं रुकिये, युवराजदेव ! मैं बाहर जाकर स्थिति का निरीक्षण कर अभी आता हूँ..."

"मुझे ही बाहर जाने दो, प्रिय गोपक ! मैं देखना चाहता हूँ कि तक्षशिलाधीश को तुम्हारी अट्टालिका पर आक्रमण करने का साहस कैसे हुआ ? ..."युवराज ने कहा।

"तक्षशिलाधीश का यह आकस्मिक आक्रमण अवश्य कोई महत्व रखता है, युवराजदेव ! आपका बाहर निकलना उचित नहीं ..."

"तुमने मुझे कायर समझ रखा हैं, गोपक ?...."

"युवराजदेव महान वीर हैं..." चन्द्रभाल बोला—"परन्तु वीरता नीच व्यक्तियों के सामने प्रदर्शन करने की वस्तु नहीं। जब तक आपका सेवक चंद्रभाल जीवित है, आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं..."

चन्द्रभाल हाथ में नग्न कृपाण लिए बाहर आया।

देखा, कई सहस्र सैनिकों ने उसकी अट्टालिका चारों ओर से घेर ली है। प्रवेश-द्वार पर तक्षशिलाधीश खड़ा है।

निर्भीक चन्द्रभाल सीना तानकर तक्षशिलाधीश के सामने आ खड़ा हुआ। तक्षशिलाधीश ने आग्नेय नेत्रों से चंद्रभाल की ओर देखा।

"इस आकस्मिक अभियान का कारण क्या है, महादेय ?" पूछा चन्द्रभाल ने।

बिना चन्द्रभाल का उत्तर दिये उसने अपना प्रश्न उपस्थित कर दिया—

"युवराजदेव कहाँ हैं ?"

"पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए..." तीव्र स्वर में बोला चन्द्रभाल।

"तुम पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो ..."

"युवराज शयन कर रहे हैं..." संयत स्वर में चन्द्रभाल ने उत्तर दे दिया।

"उनसे जाकर कहो कि उनके लिए सम्राटदेव का आज्ञापत्र मुझे प्राप्त हुआ है।"

"इस समय आप क्षमा करें..." चन्द्रभाल बोला—"किसी दूसरे समय आने का कष्ट करें...."

"मैं इसी समय उनसे मिलना चाहता हूँ..." तक्षशिलाधीश बोला—"तुम उनसे जाकर मेरा सन्देश निवेदन करो...."

चंद्रभाल को क्रोध आ गया, तक्षशिलाधीश की अपमानजनक बातें सुनकर।

"मैं देख रहा हूँ, तक्षशिलाधीश !..." सरोष बोला चंद्रभाल—"तुम कदाचित यह भूल गये हो कि किसके सामने खड़े हो ?...."

"जानता हूँ कि मैं एक निकृष्ट विद्रोही के सामने खड़ा हूँ...और तुम जानते हो कि तुम किसके सामने खड़े हो ?...."

"भली प्रकार जानता हूँ..." गरजकर बोला चंद्रभाल—"मैं साम्राज्यशाही के अधम अनुचर, एक देशद्रोही के सामने खड़ा हूँ।"

"चंद्रभाल ! तुम्हारी बातें सहनशीलता की सीमा का अतिक्रमण कर रही हैं..." क्रोधमिश्रित स्वर में तक्षशिलाधीश बोला।

"फिर भी हाथ में कृपाण रहते कायरों की तरह वाक्-युद्ध करते हो ?..." चन्द्रभाल ने ललकारा—"निकालो कृपाण !..."

"मैं भीतर प्रवेश करूँगा..."

"तुम मेरे हाथ में कृपाण रहते एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते—अच्छा होगा कि तुम सम्राट का आज्ञापत्र मुझे दे दो—मैं युवराजदेव के समक्ष उसे स्वयं उपस्थित कर दूँगा...."

"........."

चुप रहकर कुछ सोचने लगा तक्षशिलाधीश और तब एक पत्र निकाल कर चंद्रभाल के हाथ पर रख दिया। चंद्रभाल ने चुपचाप वह पत्र ले लिया और भीतर प्रविष्ट हुआ।

युवराज कुणाल खड़े थे हाथ में नग्न कृपाण लिए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे शीघ्र ही चंद्रभाल की सहायता कर सकें।

उसी समय चंद्रभाल वहाँ प्रवेश किया और युवराज के हाथ पर सम्राट का आज्ञापत्र रख दिया।

"क्या है यह चंद्रभाल ?" पूछा युवराज ने।

"सम्राटदेव का आज्ञापत्र !" उत्तर दिया चंद्रभाल ने।

युवराज शीघ्रता से पढ़ने-लगे।

ज्यों-ज्यों वे पत्र पढ़ते जाते, त्यों-त्यों उनकी मुखाकृति म्लान होती जाती थी। पत्र समाप्त होने के पहले ही युवराज का शरीर काँपने लगा और वह आज्ञा-पत्र उनके शिथिल हाथों से छूटकर भूमि पर जा गिरा।

युवराज मस्तक पकड़कर पलंग पर बैठ गये।

"क्या है युवराजदेव ?..."

चन्द्रभाल को युवराज की दशा देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

युवराज बोले नहीं कुछ—केवल तर्जनी अँगुली से उस आज्ञा-पत्र की ओर संकेत कर दिया।

चन्द्रभाल ने वह पत्र उठा लिया और पढ़ने लगा—

पत्र के ऊपर ही सम्राट की मुद्रा अंकित थी, और उसके नीचे इस प्रकार लिखा हुआ था—

मौर्यसम्राट, मगधपति, धर्मरक्षक, प्रियदर्शी सम्राट अशोक-वर्धनदेव द्वारा प्रेषित आज्ञापत्र !

अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि युवराज कुणाल तक्षशिला प्रदेश में विद्रोह शांत करने के लिए भेजे गये थे, परन्तु वे अपने कर्त्तव्य पर स्थिर न रह सके और उन्होंने विद्रोहियों से मिलकर राजभक्त कर्मचारियों का प्रखरतर अपमान किया है।

मौर्यसाम्राज्य को युवराज से बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, परन्तु उन्होंने विद्रोहियों का पक्ष लेकर अपने को न्याय की दृष्टि में विद्रोही प्रमाणित कर दिया है। अतः तक्षशिलाधीश को दण्ड-व्यवस्था का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किया जाता है और आज्ञा दी जाती हैं कि वे तप्त लौह-शलाका द्वारा अपराधी कुणाल के दोनों नेत्र दग्ध कर दें, ताकि भविष्य में इस प्रकार का गर्हित कार्य करने का साहस किसी में न हो और अपराधी को आज्ञा दी जाती है कि वह उक्त दण्ड पा चुकने के पश्चात्, एक दिवस के अनन्तर भिक्षु की दीक्षा लेकर, बौद्धधर्म के प्रचारार्थ मौर्य-साम्राज्य की सीमा के बाहर चले जाँय !

मौर्यसम्राट अशोकवर्धन।

चन्द्रभाल का हृदय काँप उठा।

उफ !

आज्ञापत्र प्रलय का द्योतक था—

एक सम्राट ने युवराज को दण्डित किया था—

एक पिता ने पुत्र को मृत्यु से भी भयावह दण्डाज्ञा दी थी।

दाँत पीसने लगा चंन्द्रभाल !

वह दौड़कर युवराज के पास आया। वे चिन्तित बैठे थे।

उनका विश्वास था कि सम्राट उन्हें बहुत चाहते हैं, परन्तु इस निष्ठुर आज्ञा-पत्र ने विश्वास को ठोकरे मारकर धराशायी कर दिया था।

"क्या यही आपके कार्य का पुरस्कार हैं, युवराजदेव ?...." चन्द्रभाल ने अपनी अर्न्तवेदना प्रकट की।

"मैं दुःखी हूँ, प्रिय गोपक !...सम्राट की आज्ञा ने मुझे अत्यन्त

...कित कर दिया है।" युवराज ने कहा।

"पर यह सम्राटदेव की आज्ञा नहीं प्रतीत होती है। वे ऐसा ...र आज्ञापत्र आप जैसे पुत्र को नहीं दे सकते..."

"इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं, मित्र! आज्ञापत्र पर ...म्राट की मुद्रा अंकित है...."

"........"

बेचैनी से हाथ मलने लगा चन्द्रभाल।

"गोपक!..."युवराज के मुख से कम्पित स्वर निकला।

"आज्ञा युवराजदेव!..."

"यह दण्ड-व्यवस्था सम्राट द्वारा निर्धारित है...."युवराज करुण ...वाणी में बोले—"और यह मुझे स्वीकार है...."

"युवराजदेव!..." बोला चन्द्रभाल—"मैं ऐसा नहीं होने ...दूंगा...मैं आपके लिए सम्राट से भी युद्ध करने का साहस रखता ...हूँ..."

"वे मेरे पिता हैं, चन्द्रभाल!....उनकी आज्ञा मुझे माननी ही ...होगी..."

"युवराजदेव! आप एक मित्र का हृदय नहीं परख रहे हैं...मैं ...कदापि आपको यह दण्ड स्वीकार करने नहीं दूंगा...मेरे हाथ में ...कृपाण रहते कोई भी आपसे यह स्वीकार करने को बाध्य नहीं कर ...सकता...."

"तक्षशिलाधीश को बुलाओ!...."

"युवराज!...प्रिय युवराज!...."

"तुम तक्षशिलाधीश को बुलाओ, प्रिय गोपक!..."

परन्तु चन्द्रभाल के बाहर जाने के पहले ही तक्षशिलाधीश, कई सैनिकों तथा दो चण्डालों के साथ वहाँ आ पहुँचा।

"वहीं ठहरो!..."गरजा चन्द्रभाल।

"आने दो चन्द्रभाल! उन्हें आने दो..."युवराज ने कहा—

"आओ तक्षशिलाधीश सम्राट की आज्ञानुसार दण्ड की व्यवस्था करो...."

"मेरी मानिए, युवराजदेव !....जो पिता अपने पुत्र का संसार उजाड़ सकता है वह पिता नहीं शत्रु है "

चन्द्रभाल की बातें सुनकर युवराज के मुख पर एक क्षीण मुस्कान प्रस्फुटित हुई।

"प्रिय गोपक..."बोले वे—"पिता जन्मदाता और पालनकर्ता दोनों हैं। अतः उन्हें अधिकार है कि वे पुत्र को जो भी चाहे दण्ड दे।

तक्षशिलाधीश ने चण्डालों को आज्ञा दी।

चाण्डालों ने दो लौह-शलाकाएँ अग्निशिखा में डाल दी धीरे-धीरे तप्त-लालिमा, श्याम शलाकाओं पर चढ़ने लगी। गोपक चन्द्रभाल क्रोध एवं आवेश से हाथ मल रहा था। बोला वह युवराज के पैर पकड़कर—

"मैं फिर कहता हूँ, युवराजदेव ! मुझे अपनी मित्रता निभाने का अवसर दें—मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर आपके लिए पाटलीपुत्र का राज्य-सिंहासन प्राप्त कर सकता हूँ···साम्राज्यवादियों का गर्व चूर कर, मौर्यसाम्राज्य को आपके चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ...आप मुझे आज्ञा दें, युवराजदेव !...."

"धैर्य रखो, प्रिय चन्द्रभाल !"

युवराज ने चन्द्रभाल का हाथ पकड़कर उठाया।

"आप मेरी मित्रता के साथ अन्याय कर रहे हैं, युवराजदेव ! मुझपर दया कीजिये..."

शलाकाएँ रक्तवर्ण हो उठी थीं।

एक चण्डाल ने दोनों शलाकाएँ अपने हाथों में ले लीं।

"अपराधी ! दण्डाज्ञा के लिए प्रस्तुत हो जाओ।"

तक्षशिलाधीश का गर्वयुक्त स्वर सुनकर चन्द्रभाल का वीर हृदय

...कार कर उठा। उसने अपनी कृपाण दृढ़तापूर्वक पकड़ ली—

परन्तु युवराज ने स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर हाथ फेरा और ...न्त मुद्रा में चण्डाल के सामने आकर खड़े हो गये।

युवराज कुणाल को अपने सामने देखकर चण्डाल चौंक पड़ा। ...से अब तक यह मालूम न था कि उसे युवराज को नेत्रहीन ...रना है।

"शलाकाओं से अपराधी की आँखें जला दो!"

तक्षशिलाधीश ने तीव्र स्वर में चण्डाल को आदेश दिया।

"... ."

परन्तु चण्डाल ज्यों का त्यों निश्चल खड़ा रहा।

"आगे बढ़ो!..." पुनः गरजा तक्षशिलाधीश।

"........." दोनों चण्डालों के मस्तक नीचे झुक गये।

जिसने तप्त लौह शलाकाएँ हाथ में पकड़ी हुई थीं, उसने उन्हें ...मि पर फेंक दीं।

"क्या बात है?..."

"श्रीमान्! हम यह नहीं जानते थे कि हमें श्रीयुवराजदेव के ...लिए यहाँ लाया गया है, नहीं तो हम कदापि न आते..." चण्डाल ...बोले—"हम यह कार्य कभी न करेंगे।"

"तुम राजाज्ञा का उल्लंघन कर रहे हो..."

"हम इस अपराध का दण्ड स्वीकार करते हैं।" चण्डाल बोले।

तक्षशिलाधीश अपने उबलते हुए क्रोध को पी गया और अपने ...ाथ आये सैनिकों की ओर उसने देखा। वे भी मस्तक झुकाये हुए ...स्थिर खड़े थे।

"क्या तुम लोग भी मेरी आज्ञा अस्वीकार करते हो?..." पूछा तक्षशिलाधीश ने।

"......."

सभी सैनिक मौन हो प्रस्तरवत् खड़े रहे! तत्पश्चात् उन्होंने

अपने-अपने कृपाण निकाल तक्षशिलाधीश के सामने फेंक दिये तीव्र गति से प्रकोष्ठ के बाहर हो गये।

तक्षशिलाधीश क्रोध से हाथ मल रहा था।

युवराज के निश्चल शरीर में कम्पन हुआ और उन्होंने बढ़कर भूमि पर पड़ी हुई शलाकाएँ उठा लीं।

तक्षशिलाधीश चौंक पड़ा।

चन्द्रभाल काँप उठा।

"तक्षशिलाधीश महोदय!" युवराज स्थिर वाणी में "आप चिन्ता न करें...यदि कोई यह दण्ड-व्यवस्थापूर्ण करने प्रस्तुत नहीं तो मैं स्वयं ही इसे पूर्ण करूँगा। यह मेरे पिता की आज्ञा है, सम्राटदेव की आज्ञा है....आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है..."

"युवराज कुणाल ने शलाकाएँ अपने नेत्रों की ओर की और एक बार अपने चारों ओर देखा।

चन्द्रभाल दौड़कर युवराज से लिपट गया।

"चन्द्रभाल!...धैर्य रखो, चन्द्रभाल!"

"अनर्थ न करो, युवराज!...प्रलय की सृष्टि न करो।"

"तुम्हें अपनी मित्रता की सौगन्ध है, चन्द्रभाल!...." युवराज ने कहा—"तुम मुझे छोड़कर पृथक हो जाओ, बन्धु!..."

जोरों से सर पीट लिया चन्द्रभाल ने और युवराज को छोड़कर पृथक हो गया।

बोला—"क्षणमात्र के लिए रुक जाइए, युवराज! देवी कांचनमाला और कुमार को तो आ जाने दीजिये। अन्तिम बार उन्हें भर आँख देख लेने दीजिए, देख लेने दीजिए एक पिता की क्रूर आज्ञा को.."

"व्यर्थ है यह ममता-माया...अब तो मुझे नेत्रहीन बनकर दीक्षा लेनी है और सम्राटदेव की आज्ञानुसार भिक्षुक बनकर भिक्षाटन करना है...."

"हे भगवान् !"

बेसुध सा होकर चन्द्रभाल गिर पड़ा।

उसी समय बाहर खड़े सैनिकों का प्रबल कोलाहल सुनाई पड़ा। सहस्रों कण्ठों का सम्मिलित स्वर वायुमण्डल को प्रकम्पित कर उठा।

"हम युवराजदेव के विरुद्ध कोई कार्य सम्पन्न होने नहीं देगें... यदि उन्हें तनिक भी कष्ट दिया गया तो हम विद्रोह कर देगें..."

युवराज बाहर सैनिकों की आवाज सुनकर समझ गये कि तक्षशिलाधीश के साथ आये हुए समस्त सैनिक, उनके लिए प्राणोत्सर्ग करने को प्रस्तुत हैं।

परन्तु उनके सामने था कर्त्तव्य-पालन का भीषण पथ ! उन्हें तो अपने पिता की आज्ञाग्नि में अपनी नयन-ज्योति की आहुति देनी थी। उन्हें तो युवराज पद का परित्याग कर भिक्षु बनना था।

"ॐ नमो बुद्धाय !..."

युवराज के मुख से उपरोक्त शब्द निकले। जड़ हुए हाथों ने तप्त शालाकाओं को प्रोज्जवल नयनों की ओर बढ़ाया मुखाकृति पर रचिक भी मलीनता न आई। नेत्रों में एक बूँद आँसू तक न आये।

आज्ञाकारी पुत्र ने अपनी नयन-ज्योति लूटा दी।

वीर युवराज ने आँखों की आहुति दे दी थी। नयन-वेदियों से अब भी धुआँ निकल रहा था।

युवराज का दुतसाहस देखकर तक्षशिलाधीश का रोम-रोम काँप उठा। परन्तु अपने विपक्षी की दयनीय दशा देखकर उसका अर्न्तमन हर्षनाद कर रहा था।

"यह आपने क्या किया, युवराज ?" रो पड़ा चन्द्रभाल।

युवराज टटोलते हुए उसके पास पहुँचे।

बोले—"यही होना था मित्र !..."

"अभागा हूँ मैं युवराज !...आपके लिए कुछ भी न कर सका....

मेरी मित्रता पड़ी सिसकती रह गयी और आपका विनाश हो गया संसार मुझे क्या कहेगा, युवराज ?"

"कुछ नहीं कहेगा, चन्द्रभाल !"

"कहेगा....अवश्य कहेगा...कहेगा कि चन्द्रभाल, जब मृत्यु समीप था तो युवराज ने अपने प्राणों पर खेलकर उसकी रक्षा की और जब युवराज की नयन-ज्योति लुट रही थी, कृतघ्न खड़ा-खड़ा देखता रहा ..."

बाहर सैनिकों का कोलाहल चरमसीमा तक पहुँच गया था

"हम विद्रोह करेंगे..."

"युवराज कुणालदेव की जय !"

"विद्रोही सरदार गोपक चन्द्रभाल कीं जय !"

जयघोष तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था।

युवराज धीरे-धीरे प्रकोष्ठ के बाहर की ओर बढ़े। सैनिक देखकर हर्षनाद कर उठे। परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी दशा वातावरण दुःखपूर्ण हो गया।

उन्होंने देखा—

युवराज नेत्रहींन हो गये हैं। गालों पर रक्त की धारा बह है और आँखे निर्जीव हो गई हैं।

"सैनिक बन्धुओं !..." युवराज ने कहा—"शांत रहिये लोग...हमें इस समय क्रांति की नहीं, शांति की आवश्यकता है पिता ने पुत्र का अपराध देखा और उसे दण्ड दिया...सम्राटदेव युवराज में त्रुटि देखी और उसका न्याय किया—आप सम्राटदेव प्रति निष्ठावान बने रहें—विद्रोह की ओर उन्मुख न हो..."

"..........."

सबके मस्तक झुके हुए थे।

"भावी प्रबल है, मेरे मित्रों ! युवराज के भाग्य में जो था, वही उसे प्राप्त हुआ है।"

सुनकर सैनिकों के नेत्रों से अश्रु धारा प्रवाहित हो चली।

"आप लोग वापस जाँय ...तक्षशिलाधीश ने यदि अन्याय किया है, उसका न्याय सम्राटदेव पर छोड़िये। आप कोई भी राज्य-विरोधी न करें, यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है...."

थोड़ी ही देर में वह स्थान जनशून्य हो गया। समस्त सैनिक तक्षशिलाधीश आदि चले गये थे।

युवराज के पीछे खड़ा गोपक चन्द्रभाल केवल आँसू बहाता था।

"मित्र चन्द्रभाल!" युवराज ने पुकारा।

"......"

चन्द्रभाल चुपचाप खड़ा रहा। उसकी हिचकियाँ स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं।

"चंद्रभाल! अब तो सब चले गये न ?...."

"हाँ!" चंद्रभाल के मुख से केवल इतना ही निकला।

"तो मुझे प्रकोष्ठ के भीतर ले चलो..."

"........."

चंद्रभाल ने आगे बढ़कर युवराज को सहारा दिया और भीतर जाकर उन्हें पलँग पर बैठा दिया।

"चंद्रभाल! देवी कांचनमाला अब तक नहीं आई..." युवराज बोले—"तुम जाकर कांचन और सम्प्रति को मेरा संदेश दो....मैं चाहता हूँ कि मौर्यसाम्राज्य परित्याग करने के पूर्व एक बार उनसे मिल लूँ।"

"मैं अभी जाता हूँ..."

सिसकियाँ मारता हुआ चंद्रभाल बाहर चला गया।

युवराज अग्रिम कार्यक्रम पर सोचते हुए बैठे रहे!

लगभग घण्टे भर बाद, बाहर खटपट का स्वर सुनाई पड़ा और कोई, दौड़ता हुआ युवराज के पैरों से लिपट गया।

"कौन ?...देवी कांचनमाला ?..."युवराज बोले।

"यह क्या हो गया, देव ! यह क्या कर लिया आपने ?" आर्तनाद कर उठी कांचन। युवराज के पैरों से लता-सी रही वह !

द्वार पर चंद्रभाल और सम्प्रति खड़े थे। निस्तब्ध ! निश्चेष्ठ !

"कांचन !....प्राणेश्वरी !"

"किसने मेरा संसार उजाड़ा, देव ?...किसने मेरे प्राण नयनों की आहुति माँगी ?...किसने मेरे सुहाग के साथ किया ?..."

"शांत रहो देवी !"युवराज ने कहा।

"शांत रहूँ...."

एकाएक उठकर खड़ी हो गई कांचनमाला।

उसके मुख पर क्रोध की लालिमा, क्षत्राणी का तेज, प्रलय भयङ्करता, सब एक साथ प्रस्फुटित हो उठीं।

"अब शांत कैसे रह सकती हूँ, देव !..."बोली वह—' तो मेरा रोम-रोम अशांत हो उठा है...."

"शांति, जीवन की अग्रदूतिका और अशांति मृत्यु का प्रतीक देवि !..."

"मैं क्षत्राणी हूँ..." क्रुद्ध स्वर में बोली कांचन— संसार उजड़ा देखकर पागल हो उठी हूँ—"मैं शांति नहीं, का आलिंगन कर प्रतिशोध चाहती हूँ...."

"आर्ये !..."

"जिसने मेरा संसार नष्ट किया है, मैं उसे नष्ट करके रहूँगी...

"कांचन ?" चिल्लाये युवराज।

परन्तु कांचनमाला तो इस समय चण्डिका हो रही थी। क्षत्राणी का ऊष्ण रक्त, क्रोध के वशीभूत हो उबल पड़ा था।

उस

...की ज्योति अपहरण की है,

...मेरे प्राण के नयनों की ज्योति

...अग्नि में शोक बलि चढ़ा दूँगी..."

... देवी ! भद्रे !"

... कांचन की ओर बढ़े, परन्तु पलंग से ठोकर खाकर गिर

...भाल ने दौड़कर उन्हें उठाया।

... रणचण्डी हूँ..." गरज पड़ी कांचन—"मैं हाथ में कृपाण ... प्रतिहिंसाग्नि की ज्वाला प्रज्वलित करूँगी। मैं अपने बाहुबल से ... राज्य का सिंहासन डगमगा दूँगी ..मैं अपने प्रति किये गये ... का प्रतिशोध लूँगी मैं संसार को दिखा दूँगी कि..."

कहते-कहते कांचनमाला चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ी।

युवराज की दशा देखकर उन्हें महान् मानसिक अघात पहुँचा यही कारण था कि वह एकाएक विक्षिप्त हो उठी थी।

कई घण्टे के उपचार के बाद कांचन को चेतना आई।

चैतन्य होने पर वह रोने लगी।

"देव, तुमने यह क्या किया ? तुम्हारी यह आहुति न्यायानुकूल नहीं हुई। पति और पत्नी को साथ-साथ आहुति देनी चाहिये थी..."

"धैर्य रखो, देवि !"चन्द्रभाल ने कहा।

"धैर्य तो उस दिन प्राप्त होगा, जब मैं अपनी प्रतिज्ञापूर्ति में प्राप्त करूँगी। भाई चंद्रभाल, तुम्हें मेरा साथ देना होगा..."

"मैं सदैव आपके साथ हूँ और जीवनपर्यन्त रहूँगा, देवि !..."

"कांचनमाला !..." युवराज बोले—"अपने क्रोध को संयत ....वे मेरे पिता हैं—उनका मुझपर पूर्ण अधिकार है...."

कांचन को पुनः आवेश आ गया।

बोली—"वे आपके पिता हैं, उनका आप पर पूर्ण अधिकार है... मैं आपकी पत्नी हूँ, और मेरा कुछ भी अधिकार नहीं ?..."

"आर्ये ! तुम मेरे सुख दुःख की संगिनी हो...."

"आप पितृभक्त हैं और मैं पतिव्रता..." कांचन बोली—"अपने

पति के प्रति किये गये अन्याय के प्रतिकारार्थ, भगवान से भी टक्कर लेने की शक्ति मुझमें आ गई है...."

"यह अन्याय नहीं था, देवि !"

"यह अन्याय नहीं था ?..." तड़पकर बोली कांचन—"पिता के प्रति आपके हृदय में इतनी श्रद्धा है कि आप न्याय और अन्याय की परिभाषा तक भूल बैठे हैं..."

"तुम भूल कर रही हो, देवि !...."युवराज बोले।

"इस भूल के लिए मुझे पश्चात्ताप न होगा, देव ! मेरे पति के साथ अहिंसा का ढोंग प्रदर्शित करनेवाले न्याय ने, हिंसक-सा व्यवहार किया है। अब एक बार पुनः कलिंग-युद्ध की पुनरावृत्ति होगी, देव !..."

"तुम विक्षिप्त-सी हो उठी हो, भद्रे !...." युवराज बोले—"एक दिन तुम अवश्य अपनी इस भूल के लिए पश्चात्ताप करोगी, एक न एक दिन तुम्हें क्रांति-मार्ग छोड़कर, शांति-पथ पर अग्रसर होना पड़ेगा...."

"भविष्य पर मैं विश्वास नहीं करती। इस समय मेरे सामने 'वर्तमान' है—मैं दिखा दूँगी कि स्त्री का क्रोध कितना भीषण होता है, संसार को प्रदर्शित कर दूँगी कि शांति-मार्ग ढोंग मात्र हैं, क्रांति का मार्ग ही कल्याण मार्ग है..."

"भगवान बुद्ध तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करें, आर्ये !..."युवराज बोले—"अब हम और तुम भिन्न-भिन्न मार्ग के पथिक हो चुके हैं। अब हमारा और तुम्हारा पथ पृथक-पृथक है ? आज से हम तुम संसार वालों के समक्ष भिन्न-भिन्न आदर्श उपस्थित करेंगे।"

"देव...!"

"परन्तु मेरा विश्वास है कि जीवन की शेष अवधि में हमारा तुम्हारा पुनः एकाकार होगा..."

"क्या देव यहाँ से प्रस्थान करेंगें ?...."

"हाँ राजाज्ञा ने मुझे विवश कर दिया है..." युवराज बोले—"प्रिय चंद्रभाल ! तुम मेरे लिए काषाय-वस्त्र का प्रबंध कर दो ! अब मैं भिक्षुक हूँ, प्रथम भिक्षा की याचना तुम्हीं से करता हूँ..."

"ऐसा न कहिये युवराज ! आप मेरे अन्नदाता हैं..." चंद्रभाल बोला।

"युवराज न कहो, चंद्रभाल !...केवल कुणाल कहो...भिक्षु कुणाल !..."

"शीघ्र ही युवराज काषाय-वस्त्र धारण कर निर्वासन-दण्ड के लिए प्रस्तुत हो गये।

अब वे पूर्णरूप से भिक्षु बन गए थे। सर पर के लम्बे-लम्बे वाल मुंड़े हुए थे, हाथ में कमण्डल था, पैर में चरणपादुका और शरीर पर था काषाय वस्त्र !

चंद्रभाल ने भिक्षु के चरण छुये।

कांचनमाला ने उनके पैरों पर गिरकर आँसुओं से उनका प्रक्षालन किया।

सम्प्रति ने अश्रु वर्षा से उनका स्वागत किया।

कुणाल चल पड़े। कांचन के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहती रही। चंद्रभाल रो पड़ा, परन्तु भिक्षु कुणाल आगे बढ़ते गये जैसे वाह्य-ज्योति खोकर, उन्होंने आंतरिक,ज्योति प्राप्त कर ली हो।

१६

राजमहिषी तिष्यरक्षिता को तक्षशिलाधीश के गुप्तचर से जब यह समाचार मिला, कि युवराज कुणाल नेत्रहीन होकर तक्षशिला से चले गये तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

क्यों न प्रसन्न होती वह ? उसके जीवन की महान आकाँक्षा जो पूर्ण हुई थी।

उसने उसी समय तक्षशिलाधीश को एक गुप्त संदेश भेजा कि वह शीघ्र ही सम्राट के नाम एक पत्र लिखकर भेजे कि युवराज कुणाल स्वेच्छा से भिक्षु होकर देश-पर्यटन को चले गये हैं।

ऐसा करने से तिष्यरक्षिता का षड़यंत्र सम्राट कभी जान न सकेंगे।

उधर भिषगशिरोमणि त्र्यम्बक गुप्त की अद्भुत चिकित्सा से सम्राट अशोक का रोग धीरे-धीरे दूर हो रहा था। अब वे चलने-फिरने योग्य हो गये थे। इस रोग से सम्राट को एक कटु अनुभव हुआ था। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा था कि तिष्यरक्षिता उनकी बीमारी के दिनों में उनसे खिची-खिची रहती थी। केवल दिखाने के लिए वह कभी-कभी उनके पास आ जाती थी।

वे समझ गये कि तिष्यरक्षिता के हृदय में केवल उनके वैभव से प्रेम है। उनके दुःख-सुख से उसे सरोकार नहीं।

सम्राट अशोक स्वर्णपट्टिका पर बैठे थे। उसी समय आ पहुंचे आमात्यश्रेष्ठ।

सम्राट को अभिवादन कर वे एक ओर खड़े हो गये।

"अब सम्राटदेव का स्वास्थ्य कैसा है?...." पूछा उन्होंने।

"अब तो स्वस्थ हो रहा हूँ, आमात्यश्रेष्ठ!..." सम्राट बोले—"अब चिन्ता की कोई बात नहीं..."

"सम्राटदेव की अवस्था ने सभी को चिंताकुल कर दिया था..."

"युवराज कुणाल का कुछ समाचार मिला?..." पूछा सम्राट ने

"इधर तो कोई समाचार नहीं मिला है, सम्राटदेव!....कुछ दिन पूर्व एक पत्र आया था, जिसमें तक्षशिलाधीश ने लिखा था कि युवराज ने विद्रोह शांत कर दिया है..."

"तब से कोई पत्र नहीं आया?"

"नहीं देव!..."

"कुणाल को मेरी अस्वस्थता का समाचार भेजा था, आपने?"

सम्राट अशोक ने पूछा ।

"......." सर झुका लिया आमात्यश्रेष्ठ ने ।

"बोलिये आमात्यश्रेष्ठ महोदय !"

"नहीं सम्राटदेव !..." आमात्यश्रेष्ठ बोले—"युवराज कुणालदेव यह समाचार नहीं दिया जा सका...."

"क्यों ?"

"राजमहिषी की आज्ञा ?...." विस्मित हो उठे सम्राट—"राजमहिषी ने यह समाचार युवराज कुणाल के पास क्यों नहीं प्रेषित करने दिया ?..."

"इस बात का उत्तर तो राजमहिषी ही दे सकती है, देव ! .."

"उन्हे शीघ्र उपस्थित होने का आदेश दीजिये !..." सम्राट ने आज्ञा दी ।

आमात्यश्रेष्ठ ने परिचारिका को, राजमहिषी के पास भेज दिया और राजमहिषी शीघ्र आ उपस्थित हुई ।

"क्या आज्ञा है सम्राट देव ?..." डरते-डरते पूछा तिष्यरक्षिता । "तुमने युवराज के पास मेरी अस्वस्थता का समाचार क्यों नहीं भेजने दिया ?..." रुक्ष स्वर में पूछा सम्राट ने ।

चौंक पड़ी तिष्यरक्षिता । कुछ क्षण तक निश्चल खड़ी रही वह ।

"उत्तर दो राजमहिषी !" तीव्र स्वर में बोले सम्राट ।

सम्राट के हृदय में तिष्यरक्षिता के प्रति अब वह आकर्षण—वह नहीं रह गया था । न जाने क्यो ?

"सम्राटदेव मुझे क्षमा करें..." तिष्यरक्षिता ने कहा—"मैंने —युवराज विद्रोह-शमन मे व्यस्त होंगे, अतः देव की रुग्णता का पाकर शिथिल पड़ जायेंगे—"

"हूँ !..."

सम्राट ने प्रज्वलित नेत्रों से तिष्यरक्षिता की ओर देखा, तो क्षिता उन नेत्रों की ज्वाला से जैसे दग्ध हो उठी ।

"अब तुम जा सकती हो, राजमहिषी !...." सम्राट ने कहा।

इस घटना के एक सप्ताह बाद सम्राट पूर्ण स्वस्थ हो गये। साम्राज्य का संचालन-सूत्र उन्होंने अपने हाथ में ले लिया। प्रजा ने सुख की साँस ली।

परन्तु अब तक सम्राट, कुणाल की दुर्दशा से सर्वथा अनभिज्ञ रहे। तिष्यरक्षिता के प्रति उनके हृदय में घृणा का भाव उदय हो गया था, परन्तु वे स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकते थे कि तिष्यरक्षिता ने युवराज के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया होगा ?

एक दिन जब कि राजसभा में बैठे हुए सम्राट साम्राज्य के विविध विषयों पर विचार कर रहे थे, उसी समय तक्षशिलाधीश का पत्र आ पहुँचा।

सम्राट आमात्यश्रेष्ठ को पढ़ने का संकेत किया।

आमात्यश्रेष्ठ उसे पढ़ने लगे—

"प्रियदर्शी मौर्यसम्राट अशोकवर्धन के चरणों में तक्षशिलाधीश का सादर अभिवादन !

हमें सम्राटदेव की सेवा में यह निवेदन करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि विद्रोहियों को शांत करने के पश्चात् एकाएक युवराज के हृदय में विराग उत्पन्न हो गया। मैंने उनको वहुत समझाया, परन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया। गत सप्ताह उन्होंने दीक्षा ले ली तथा भिक्षु होकर देश-पर्यटन को चले गये। युवराज्ञी और सम्प्रतिदेव का पता नहीं है।

इधर युवराजदेव के न रहने से विद्रोही पुनः प्रबल हो उठे हैं और आशंका है कि शीघ्र ही तक्षशिला में उपद्रव आरम्भ हो जायगा। विद्रोहियों ने अस्त्र-शस्त्र भी एकत्र कर लिये हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार उनका आक्रमण अत्यन्त भीषण होगा। अतः सम्राटदेव से विनम्र प्रार्थना है कि वे एक बार यहाँ स्वयं पधार कर विद्रोहियों का दमन करें। बिना सम्राटदेव के पधारे विद्रोही शांत न होंगे !

—तक्षशीलाधीश

समाचार सुनकर कुछ देर तक सम्राट विचार करते रहे। उन्हें मालूम हो गया कि इस बार तक्षशिला का विद्रोह वास्तव में भयंकर होगा।

सबसे अधिक दुःख तो उन्हें युवराज के विषय में हुआ।

"आमात्यश्रेष्ठ !..."

"आज्ञा देव !..."

"कुणाल भिक्षु होकर न जाने कहाँ चले गये, इसका क्या कारण हो सकता है ?...."

"यह समाचार विश्वास करने योग्य नहीं, सम्राटदेव !...."

"परन्तु विश्वास करना ही पड़ेगा, आमात्यश्रेष्ठ !..." सम्राट बोले—"क्योंकि स्वयं तक्षशिलाधीश का हस्ताक्षर है इस पत्र पर..."

"मानता हूँ हस्ताक्षर है, यथापि युवराजदेव का इस प्रकार चले जाना अवश्य रहस्यमय है...."

"कुछ समझ में नहीं आता...." चिंतातुर स्वर में बोले सम्राट—"युवराज को क्या दुःख था, क्या ग्लानि थी, जो वह बिना मुझसे आज्ञा प्राप्त किये भिक्षु हो गये...."

"युवराज के चले जाने से ही, अब विद्रोहियों का साहस कदाचित बढ़ गया है..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा !

"मैं देखता हूँ कि इस बार मुझे ही तक्षशिला जाना होगा..." बोले सम्राट—"आमात्यश्रेष्ठ ! आप कल प्रातःकाल मेरे प्रस्थान की तैयारी कर दें..."

"जो आज्ञा..."

"मैं देखूँगा कि वे विद्रोही किस धातु से निर्मित हैं, जो मौर्य साम्राज्य की प्रबल शक्ति के समक्ष विद्रोह करने का साहस कर सकते हैं ! जान पड़ता है, मुझे इस वृद्धावस्था में पुनः शस्त्र ग्रहण करना पड़ेगा..."

सम्राट के कथन का महामात्य ने अनुमोदन किया—"ऐसा ही प्रतीत होता है..."

१७

कुणाल के भिक्षु होकर चले जाने के बाद भी कांचनमाला का क्रोध शांत न हुआ ! उसके हृदय में प्रतिशोधाग्नि की भयंकर चिनगारी धधकती रही, सुलगती रही।

अपने पति की दुर्दशा देखकर उस वीर नारी का हृदय, न्यायसत्ता के प्रति घृणा से भर उठा था। वह उस न्यायसत्ता का विनाश कर देना चाहती थी, जिस सत्ता में न्याय-अन्याय परखने की शक्ति न हो—जिसमें अपराधी स्वच्छन्द घुमे-फिरे, हँसे-बोले और निरपराध दण्डित होकर नारकीय जीवन व्यतीत करे।

वह आजकल गुप्तरीति से सम्प्रति को लेकर गोपक चंद्रभाल की अट्टालिका में रहती थी !

वह पूर्ण रणचण्डी हो रही थी ! उसकी नस-नस में ऊष्ण रक्त उबल पड़ा था।

गोपक चंद्रभाल कांचन का प्रमुख सहायक था।

वह वीर था—नीतिकुशल था।

अन्याय द्वारा दण्डित युवराज के चले जानें से, उसे भी बहुत दुःख था। वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा था। शासनसत्ता की जड़ उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हो चुका था। चन्द्रभाल इस बार गुप्तरीति से भयंकर विद्रोह की सृष्टि कर रहा था।

अस्त्र-शस्त्र भी पर्याप्त मात्रा में एकत्रित हो चुके थे। दूर-दूर तक विद्रोह की चिनगारियाँ भभक उठी थीं और आशा थी कि इस बार न केवल तक्षशिला वरन् पाटलीपुत्र का राजसिंहासन तक काँप उठेगा।

कांचनमाला इस विद्रोह का नेतृत्व कर रही थी—

चंद्रभाल के गुप्तचर, दूर-दूर तक भ्रमण कर उत्तेजनापूर्ण भाषणों

लोगों को विप्लवी बना रहे थे। लोगों के हृदय में मौर्य साम्राज्य के प्रगाढ़ घृणा उत्पन्न हो गई थी। कांचनमाला को दिन भर चैन पड़ता था, रात को नींद न आती थी। वह सदैव अपनी प्रतिज्ञा-की धुन में लगी रहती थी।

वह बेचैनी के साथ उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी, जिस दिन वह मौर्य साम्राज्य के सिंहासन पर आसीन हो, न्याय की व्यवस्था देने वालों को उनके अन्याय का समुचित दण्ड दे सके।

कांचन का हृदय भयानक क्रांति से भर उठा था।

उस दिन इन्हीं सब चिंताओं में ग्रस्त कांचन बैठी थी कि चंद्र-भाल आ पहुँचा।

चंद्रभाल भी आजकल अत्यन्त व्यस्त रहता था।

आते ही बोला—"लो देवि, अब हमारे सफल होने में तनिक भी संदेह नहीं रहा।..."

"विद्रोह की सारी तैयारी पूर्ण हो चुकी, बन्धु चंद्रभाल ?...."

"हाँ देवि !..." चंद्रभाल बोला—"हमारे गुप्तचरों ने जनता के हृदय में विनाश की प्रलयंकर अग्नि प्रज्वलित कर दी है। अग्नि प्रज्वलित हैं, अब हुताहुति देनी शेष है..."

"विद्रोही सेना में कितने सैनिकों का समावेश हो चुका हैं ?" कांचन ने पूछा।

"पचास सहस्र से भी अधिक !"

"ठीक है..." कांचन बोली—"हमारी सेना की संख्या पर्याप्त है। मैं स्वयं रणक्षेत्र में इन सैनिकों का संचालन करूँगी..."

"जहाँ तक होगा, हम अपनी सेना को युद्ध से दूर रखेंगे और युक्ति से काम लेंगे..." चंद्रभाल बोला—"हम अपनी शक्ति तबतक सुरक्षित रखे रहना चाहते हैं, जब तक कि हम पाटलीपुत्र न पहुँच जाय...हमारा निर्णायक युद्ध वहीं होगा..."

"तुम-सा सहायक पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, बन्धु चंद्रभाल..."

कांचनमाला ने कहा—"हमारी आकांक्षा पूर्ण होने में अब अधिक विलम्ब नहीं प्रतीत होती..."

"सत्य है, देवि !..." चंद्रभाल बोला—"अब वह दिन ही है.. मेरी प्राण-रक्षा युवराजदेव ने की थी—अब यह प्राण आपका है, देवि कांचनमाला ! अब यह आपकी ही सेवा में विसर्जित होगा..."

"धन्य हो गोपक चंद्रभाल ! धन्य हो..."

कांचन के मुख से हर्षध्वनि निकल पड़ी।

"कल विद्रोहियों की एक गुप्त सभा का आयोजन किया गया है..." चंद्रभाल ने कहा।

"किस स्थान पर होगी यह सभा ?...." पूछा कांचमाला ने।

"इसी अट्टालिका के अंतर्प्रदेश में..." उत्तर दिया चंद्रभाल ने।

"कार्यक्रम क्या है ?"

"आगामी कार्यप्रणाली पर विचार होगा और विद्रोह प्रारम्भ करने की तिथि निश्चित की जायेगी..." चंद्रभाल ने कहा—"और विद्रोही जनता अपनी साम्राज्ञी के दर्शन कर कृत्य-कृत्य हो जायेगी..."

दूसरे दिन—

एक-एक करके विद्रोही, गोपक चंद्रभाल के विशाल भवन में एकत्रित होने लगे और देखते-देखते, कई सहस्त्र व्यक्ति सभा में आ उपस्थित हुए।

सारी सभा में नीरवता व्याप्त थी। सब उत्सुकतापूर्वक कांचकमाला और चंद्रभाल के अंतर्प्रकोष्ठ से बाहर निकलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कांचनमाला और चंद्रभाल अभी तक भीतर ही कुछ विचार-विमर्श कर रहे थे।

"हमारे प्रमुख गुप्तचर ने अभी समाचार दिया है कि सम्राट वर्धनदेव अत्यन्त गुप्त रीति से तक्षशिला पधारें हैं...." चंद्रभाल कहा।

"इस प्रकार छिपकर तक्षशिला आने का भी कदाचित् कोई विशेष कारण होगा....?" कांचनमाला बोली।

"हो सकता है, देवि ?..." चंद्रभाल ने कहा—"सम्राटदेव अत्यन्त नीतिकुशल व्यक्ति हैं, उनका पदार्पण सुनकर हृदय में आशंका हो रही है ''

"कब आये हैं, सम्राटदेव ?"

"कल सायंकाल ही तक्षशिला पहुँच चुके हैं..." बोला चंद्रभाल।

"कोई चिंता नहीं, बन्धु चंद्रभाल !..." कांचन ने कहा —"हम अपने निश्चय पर अटल हैं, बाधाएँ हमें नहीं रोक सकतीं...हमें शीघ्र ही आगामी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श कर लेना चाहिये..."

दोनों सभा में जाने के लिए उठ खड़े हुए।

चंद्रभाल के प्रकोष्ठ में एक गवाक्ष था, वहाँ से सभा-स्थल स्पष्ट दिखलाई पड़ता था।

दोनों गवाक्ष के पास आ खड़े हुए और उड़ती हुई दृष्टि सभा पर डाली

एकाएक न जाने क्या देखकर चौंक पड़ी कांचन !

"क्या है, देवि ?" पूछा चंद्रभाल ने।

"कुछ नहीं, चंद्रभाल !..."

"आप विस्मित क्यों हो उठी हैं ?"

"उस व्यक्ति को देखकर..." कांचनमाला ने अपनी मनःस्थिति को संयत करते हुए कहा और सभामंच के पास बैठे हुए एक व्यक्ति की ओर संकेत कर दिया।

चंद्रभाल ने उस व्यक्ति की ओर देखा —

वह एक प्रौढ़ व्यक्ति था।

मुखाकृति पर तेज दमक रहा था। नेत्रों में अद्भुत प्रकाश था शरीर सुगठित था, परन्तु वृद्धावस्था ने उसके चेहरे पर झुर्रियों सृष्टि कर दी थी। मामूली वस्त्र धारण किये हुए था वह।

"कौन हो सकता है वह, देवी कांचनमाला?" पूछा चंद्रमाल ने

"शत्रु का गुप्तचर...."

"शत्रु का गुप्तचर?...."आश्चर्यचकित मुद्रा में बोला चंद्रमाल—"वह यहाँ किस प्रकार आ पहुँचा है? उसको हमारा प्रवेश-पत्र कहाँ से प्राप्त हुआ?"

"प्राप्त हो गया होगा किसी देशद्रोही से..." कांचन ने कहा—"तुम उसे बन्दी बनाने के लिए उद्यत रहो, अत्यन्त शीघ्र...उसके बन्दी हो जाने के पश्चात् सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ होगा...."

"जो आज्ञा।" चंद्रभाल ने कहा।

कांचनमाला को प्रकोष्ट में ही छोड़कर वह बाहर निकल आया। उसे देखकर विद्रोही हर्षनाद कर उठे।

वह प्रौढ़ व्यक्ति एकाएक उठकर चंद्रभाल के पास आ गया। चंद्रभाल ने उससे प्रश्न किया—

"भद्र पुरुष! आप कौन हैं?"

पंचनद प्रांत से आया हुआ स्वातंत्रप्रेमी एक वृद्ध, जो अपनी निर्जीव हो गई अस्थियों को, मातृभूमि की वेदी पर अर्पित करने आया है..." प्रौढ़ व्यक्ति बोला।

"आपका शुभ नाम?..."पूछा चंद्रभाल ने।

"देव गुप्त!"

"आपके पास सभा का प्रवेश-पत्र है?"

"जी..."

कहकर प्रौढ़ व्यक्ति ने चिन्हांकित प्रवेश-पत्र, भीतरी जेब से निकाल कर दिखा दिया।

"......"

कुछ सोचने लगा चंद्रमाल !

"आपको मुझपर सन्देह है, श्रीमान् ?" पूछा उस व्यक्ति ने।

"नहीं महाशय !..." चंद्रमाल बोला—"आप मेरे साथ आने का कष्ट करें..." घूम पड़ा चंद्रमाल।

वह प्रौढ़ व्यक्ति उठकर चंद्रमाल के पीछे-पीछे चला।

एक दूसरे प्रकोष्ट में आकर वह रुका।

"महाशय देवगुप्त !..." बोला वह—"आप शत्रु के गुप्तचर हैं !"

"क्या कहा श्रीमान् ने ?"

"आप शत्रु के गुप्तचर है। आप अपने को बन्दी समझें, भद्र पुरुष !..." बोला चंद्रमाल, दृढ़ स्वर में।

"महाशय चंद्रमाल !...." प्रौढ़ व्यक्ति बोला–"यह मेरा अपमान है....मेरी स्वदेश-भक्ति का अनादर है..."

"चंद्रभाल विद्रोहियों का नेता है देवगुप्त महोदय !..." चंद्रमाल बोला—"उसे मौर्यसम्राट से लोहा लेना है—अतः उसके नेत्र धोखा नहीं खा सकते..."

"मैं अपने अपमान का उत्तर कृपाण से देना चाहता हूँ...." वृद्ध व्यक्ति ने अपनी कृपाण खींच ली

"व्यर्थ प्रयास होगा, भद्र पुरुष !"

कहकर चंद्रमाल ने कुछ संकेत किया और निमिष मात्र में शशस्त्र सैनिकों ने आकर प्रौढ़ व्यक्ति को चारों ओर से घेर लिया।

प्रौढ़ व्यक्ति ने कृपाण नीची कर ली।

"इन्हें बन्दीगृह ले जाओ..."

और तब वह प्रकोष्ठ में प्रतीक्षा करती कांचनमाला के पास आया।

"वह बन्दी बना लिया गया, देवि !"

"श्रेष्ठ हुआ..." कांचन ने कहा—"अब हमे सभा में चलना

चाहिये..."

उन दोनों के सभा में आते ही घोर नाद से अट्टालिका गूंज उठी। थोड़ी देर में जब शांति हुई तो चंद्रभाल उठ खड़ा-हुआ।

"उन्मत्त विद्रोहियों !..." वह कहने लगा—"अब वह समय आ गया है, जब कि हम अपने ऊपर किये गये अत्याचारों का पूर्ण प्रतिशोध ले सकेगें ? हमने साम्राज्यवाद के विरुद्ध जिस विद्रोह की सृष्टि की है, वह केवल राजकर्मचारियों की शोषण-नीति के ही कारण..."

थोड़ी देर रुका चंद्रभाल।

पुन: बोला—

"हम विप्लवी हैं...मौर्यध्वज को विप्लव द्वारा भूमिसात कर के रहेंगे...हमारा नेतृत्व करने के लिए युवराज्ञी कांचनमाला देवी हमारे साथ है..."

"सम्राटदेव ने पिछली बार युवराज कुणालदेव के लिए जो आज्ञा प्रेषित की थी वह अत्यन्त अन्यायपूर्ण और अनुचित थी..." चंद्रभाल कह रहा था—"तथापि पितृभक्त युवराज ने वह आज्ञा शिरोधार्य की और स्वयं नेत्र-दान कर भिक्षु हो गये....युवराज प्रजा के कितने हितैषी थे, यह सब पर विदित है। सभी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनके प्रति अत्याचार देखकर हमारा रक्त उबल पड़ा है..."

आवेश में चंद्रभाल का सारा शरीर काँप रहा था

"जो सम्राट अपने पुत्र के साथ ऐसा अन्याय और अपमानजनक व्यवहार कर सकता है, वह अपनी प्रजा के साथ कैसे न्याय और उदारता का व्यवहार कर सकेगा..."

आगे नहीं बोल सका, चद्रभाल। क्रोधावेग ने उसकी जिह्वा कुण्ठित कर दी थी।

बैठ गया वह, उसके बाद कांचन उठी।

बोली—"मुझे यह देखकर महान् हर्ष हो रहा है कि मेरे प्रति

...ये गये अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिये तथा मेरी प्रतिज्ञा-पूर्ति के हेतु, महाशय चंद्रभाल ने देशवासियों के हृदय में अग्नि प्रज्वलित कर दी है। एक अबला के मान-रक्षार्थ इतने वीर युवकों का समागम हर्ष का विषय है मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ...."

सर झुकाया कांचनमाला ने। जनता में हर्ष-प्रवाह उमड़ पड़ा।

"अन्यायी शासनकर्ता का समूल विनाश कर, क्रांति के बल पर प्रजातंत्र की स्थापना ही हमारा ध्येय है..." कांचन कहने लगी—"इतने दिनों तक हम अहिंसा-मार्ग पर चलकर, बौद्धधर्म का अनुसरण करते रहे। परिणाम यह हुआ कि हम भीरु बन गये। शांति का अवलम्ब श्रेष्ठ होते हुए भी, इस समय क्रांति की आवश्यकता आ पड़ी है। कारण स्पष्ट है, साम्राज्यवाद का प्रजा पर स्वच्छन्द अत्याचार! हमें आहुति देकर प्रजा का कल्याण करना है..."

"हम सब प्रस्तुत हैं..." उपस्थित समुदाय घोष कर उठा—"हम आत्मोत्सर्ग करने के लिये जान हथेली पर लेकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर हैं..."

"धन्य हो वीर विप्लवी! धन्य है तुम्हारा साहस!..." कांचन बोली—"हमारी विजय निश्चित है...हम मौर्यसाम्राज्य पर काल बन कर घहरायेंगे। आप लोग अपनी शक्ति को संगठित रखें... सर्वप्रथम आज रात्रि में हम तक्षशिला पर अधिकार करेंगे..."

"हम तैयार है..."

"महाशय चंद्रभाल!" कांचनमाला ने चंद्रभाल को अपनी ओर आकर्षित किया।

"आज्ञा देवी..." उठ खड़ा हुआ चन्द्रभाल।

"तुम विप्लवियों की सारी सेना एकत्र कर लो। हम आज अर्द्ध-रात्रि को गुप्तरूप से तक्षशिला पर आक्रमण करेगें...हमारी विजय निश्चित है।"

"जो आज्ञा देवि...."

सभा विसर्जित हुई। चन्द्रभाल और कांचनमाला प्रकोष्ठ में आये।

"जहाँ तक मेरा अनुमान है, अभी तक राजकर्मचारियों को यह ज्ञात न होगा कि विद्रोही इतना शीघ्र आक्रमण करेंगे।" कांचन ने कहा।

"आपका अनुमान यथार्थ है, देवि !...." चंद्रभाल ने कहा।

"हमारा प्रथम आक्रमण अत्यन्त भयंकर होना चाहिये..."

"अत्यन्त भयंकर होगा, देवि ! वे किसी प्रकार हमारा वेग न सम्हाल सकेंगे..." चंद्रभाल ने कहा।

"मौर्य सैनिक तो मुझे देखते ही, मेरा पक्ष ग्रहण कर लेंगे..." कांचन बोली—"क्योंकि युवराज के प्रति हुए अत्याचार से वे भी दुःखी हैं ..."

"हमें इस पर विश्वास नही करना चाहिये, देवि !..." चंद्रभाल ने कहा—"क्योंकि स्वयं सम्राटदेव उनके साथ हैं...सम्राटदेव के रहते किसमें इतना साहस है कि उनके विरुद्ध जा सके !...."

"महाशय चंद्रभाल !"

"आज्ञा देवि !..."

"क्या तुम जानते हो कि इस समय हमारे बन्दीगृह में कौन व्यक्ति उपस्थित है ?"

"क्या देवी कांचनमाला का अभिप्राय उस प्रौढ़ व्यक्ति से है ?"

"हाँ !"

"वह तो शत्रु का गुप्तचर है..." बोला चंद्रभाल।

"नहीं महाशय चंद्रभाल !..." दृढ़ स्वर में बोली कांचनमाला।

"तब कौन है वह ?..."

"हमारे सफलता का प्रतीक !..." बोली कांचन।

"अर्थात् ।"

"हमारे मार्ग का विशालतम रोड़ा है !"

"मैं समझा नहीं ,देवि !"

"आप तो पहेली बुझा रही है, देवि कांचनमाला !..." चंद्रमाल
हा—"स्पष्ट बताइये न कौन है वह ? ..."

"स्वयं प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्धन !..."

कांचनमाला ने दाँत पीसकर कहा ।

चन्द्रभाल जैसे आकाश से गिरा ।

१८

अर्द्ध रात्रि की भयानक कालिमा तक्षशिला राजप्रसाद पर नृत्य र रही थी । चारो ओर नीरवता व्याप्त थी । केवल प्रहरियों के लाप कभी-कभी सुनाई पड़ जाते थे ।

तक्षशिला निवासी अपनी-अपनी प्रेयसियों के हृदय की धड़कनें नते-सुनते निद्राभिभूत हो गये थे ।

परन्तु तक्षशिलाधीश के नेत्रों में अबतक नींद न थी ।

वह अपने प्रकोष्ठ में बेचैनी के साथ चक्कर काट रहा था ! उसकी चारधारा उसे चिन्ता-सागर में गोते पर गोते खिला रही थी ।

सम्राट अशोक के गुप्तरूप से आने पर, उसे धैर्य बँध गया था और से आशा हो गई थीं कि सम्राट इस भयंकर विप्लव का अवश्य ही मन कर देंगे ।

यद्यपि विप्लव अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ था, परन्तु उसके घ्र आरम्भ होने की आशंका थी । आज प्रात:काल ही गुप्तचरों ने ह समाचार दिया था कि विद्रोहियों की एक वृहत् सभा, गोपक भाल के विशाल भवन पर होने वाली है । तक्षशिलाधीश ने म्राट से निवेदन किया था कि सैन्यशक्ति द्वारा विप्लवियों की सभा कर दी जाय और सब बन्दी बना लिए जायँ । परन्तु सम्राट ने उसे बात की आज्ञा नहीं दी उन्होंने भी उसी मार्ग का अनुकरण किया, अनुसरण युवराज कुणाल ने किया था, अतएव विद्रोहियों को

सभा में सम्मिलित होने के लिए छद्मवेश में एकाकी चल पड़े थे। तब से अबतक लौट कर नहीं आये थे। उन्हें गये पर्याप्त बिलम्ब हो चुका था। यही कारण था तक्षशिलाधीश की चिन्ता का, सम्राट के न आने से उसे भय ने आक्रांत कर लिया था।

उसने सम्राट की खोज में गुप्तचर भेज दिये थे, परन्तु अबतक कुछ भी पता न चल सका था। इसीलिए तक्षशिलाधीश चिन्तित मुद्रा मे, प्रकोष्ठ में टहल रहा था। परन्तु राजप्रसाद के प्रमुख द्वार पर कौन-सी घटना घट रही है, इसका उसे पता न था।

राजप्रसाद के विशाल द्वार पर सशस्त्र प्रहरी उपस्थित थे और सजग होकर पहरा दे रहे थे। पास ही एक छोटा सा प्रकाश-पुंज जल रहा था विद्रोहियों के आतंक के कारण प्रमुख द्वार पर प्रहरियों का विशेष प्रबंध कर दिया गया था।

एकाएक एक प्रहरी चौंक कर खड़ा हो गया।

कदाचित घनघोर अंधकार में कुछ दूर पर, उसे किसी मनुष्याकृति का आभास मिला था।

नोट—कुणाल की मूल कथा से पाठक अवश्य परिचित होंगे। परन्तु कथा में रोचकता लाने के लिए उपन्यास में कुछ काल्पनिक घटनओं की सृष्टि करनी ही पड़ती है। मैंने भी स्थान-स्थान पर कल्पना का सहारा लिया है। हो सकता है मेरी कल्पना से इतिहास की वास्तविक घटना पर कुठाराघात हुआ हो। परन्तु जान में मुझसे त्रुटि नहीं हुई है। उपन्यास लिखने के पहले मैंने इस विषय की पुस्तकों को अच्छी तरह अवलोकन किया है! फिर भी कहीं-कहीं कल्पना का प्रवाह तीव्र हो उठा है।

इस त्रुटि के लिए मैं भिज्ञ इतिहासज्ञों, पाठकों तथा अलोचकों से क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक इस उपन्यास में वर्णित सभी घटनाएँ ऐतिहासिक न समझे। हाँ, अधिकांश घटनाएं ऐतिहासिक हैं।

लेखक।

"कौन है ?... " प्रहरी चिल्लाया ।

अन्य प्रहरी भी उसकी ओर आकर्षित हुए ।

"क्या है ? ." दूसरे प्रहरी ने पूछा ।

"अन्धेरे में वहाँ कोई मनुष्य खड़ा है...पता नहीं कौन है ?....'

ले प्रहरी ने उत्तर दिया ।

दूसरे ने धनीभूत अंधकार में आँखें फाड़कर देखा—

सचमुच एक शवल-वस्त्र से आवृत आकृति दृष्टिगोचर हुई ।

एकाएक उस आकृति में गति उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे वह गे बढ़ने लगी ।

"ठहरो...! वहीं ठहरो !..." प्रहरी चिल्लाया ।

"......"

परन्तु आकृति रुकी नहीं, बराबर आगे बढ़ती ही गई ।

अब उसमें और प्रहरियों में बहुत थोड़ा अन्तर रह गया था ।

प्रहरी ने निषगं से तीर निकाल कर कामुंक पर चढ़ाया और से कान तक खींचा ।

"अन्तिम आदेश !..." चिल्लाकर बोला वह—"वहीं ठहरो.... हीं जान से हाथ धो बैठोगे...."

आकृति एक क्षण के लिए रुक गयी ।

"प्रत्यंचा ढीली करो...." प्रहरियों को एक गम्भीर स्वर सुनाई ड़ा । प्रहरी ने प्रत्यंचा ढीली कर दी ।

दूसरा प्रहरी प्रकाशपुंज लेकर उस व्यक्ति के पास आया, उसे के लिये । हलके प्रकाश में आने वाले व्यक्ति की आकृति स्पष्ट हो उठी । वह व्यक्ति सिर से पैर तक एक मूल्यवान सफेद ओढ़े हुए था, जिससे यह पता लगाना असम्भव था कि भीतर शरीर पर कैसे वस्त्र है । चेहरे का अधिकांश भाग प्रच्छन्न के कारण, उसे पहचानना भी कठिन था ।

'सम्राटदेव की मुद्रिका है ?" प्रहरी ने पूछा ।

उस व्यक्ति का दाहिना हाथ बाहर निकला और उसकी अना-मिका में पड़ी हुई हीरक मुद्रिका चमक उठी।

मुद्रिका पर कोई चिन्ह अंकित था, जिसे देखते ही प्रहरी चौंक पड़ा और झुककर सादर अभिवादन करने के पश्चात् कई पग पीछे हट गया।

तुरन्त ही प्रवेश द्वार खोल दिया और वह व्यक्ति भीतर प्रविष्ट हुआ।

"द्वार खुला रहने दो..." उस व्यक्ति ने कहा—"पाटलीपुत्र से सेना आ रही है उसे भीतर प्रवेश करने दो..."

कहकर चला गया वह व्यक्ति।

तो पहले ने दूसरे से पूछा—"कौन थे वे ?"

"स्वयं प्रियदर्शी सम्राटदेव।..." दूसरे ने उत्तर दिया।

सब प्रहरी सन्न रह गये।

वह व्यक्ति दुशाले से अपने शरीर को छिपाये, तक्षशिलाधीश के प्रकोष्ठ कीं ओर बढ़ा।

प्रकोष्ठ-द्वार पर सशस्त्र प्रहरी उरस्थित थे।

आगन्तुक की हीरक-मुद्रिका देखते ही वे हटकर एक ओर खड़े हो गये और उनमें से एक प्रकोष्ठ के भीतर दौड़ गया, तक्षशिलाधीश को सम्राट के आगमन की सूचना देने के लिए।

सम्राट का आना सुनकर तक्षशिलाधीश को आश्चर्य एवं प्रसन्नता साथ-साथ हुई।

वह शीघ्रता से बाहर आया।

"पधारिये सम्राटदेव !...." बोला वह।

आगे-आगे तक्षशिलाधीश और पीछे-पीछे वह व्यक्ति, प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुए।

भीतर आकर उस व्यत्ति ने अपना दुशाला शरीर पर से उतार कर रख दिया।

अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित एक सबल युवक की आकृति स्पष्ट [दि]खाई पड़ी।

"सम्राटदेव ने लौटने में बहुत विलम्ब कर दिया..." पीछे घूम [क]र बोला तक्षशिलाधीश, परन्तु आगन्तुक पर दृष्टि पड़ते ही वह [चि]ल्ला उठा—"तुम? तुम!..."

"पहचान नहीं रहे हो तुम? तक्षशिलाधीश!...."आगन्तुक [ने] पूछा।

"विद्रोही चंद्रभाल, तुम!...यहाँ?"

तक्षशिलाधीश के मुख से घबड़ाहट के कारण शब्द ही नहीं [नि]कल रहे थे।

"तुम्हें बहुत आश्चर्य हो रहा है, मुझे देखकर!...." चंद्रभाल ने हँसते हुए कहा।

तक्षशिलाधीश ने अपने को संयत किया।

बोला—"आश्चर्य क्यों होगा?...मुझे दुःख है कि मृत्यु तुम्हें [य]हाँ स्वतः खींच लाई..."

"तुमने मुझे मूर्ख समझ लिया है, तक्षशिलाधीश?..." चंद्रभाल [ती]व्र स्वर में बोला—"स्मरण रखो कि जो व्यक्ति स्वयं मौर्यसम्राट [को] बन्दी बना सकता है, उसकी शक्ति कितनी विशाल होगी?"

"सम्राटदेव को तुमने बन्दी बनाया है...क्या कहते हो तुम?"

"सत्य कह रहा हूँ, यह देखो..." चंद्रभाल ने अपनी अनामिका [मे]ं पड़ी हुई सम्राट की हीरक-मुद्रिका तक्षशिलाधीश को दिखाते हुए कहा—"यह सम्राट की मुद्रिका है, इसी के बल पर तो मैं राज-प्रकोष्ठ में प्रवेश कर पाया हूँ..."

"किसलिए आये हो यहाँ, चंद्रभाल?..." भयभीत स्वर में पूछा तक्षशिलाधीश ने।

"तुम्हें बन्दी बनाकर स्वयं तक्षशिलाधीश का पद ग्रहण करने... सावधान! उस रेशमी डोर की ओर हाथ न बढ़ाना! मैं जानता हूँ

कि उसे खींचते ही राजप्रसाद के-घण्टे बज उठेंगे और तुम्हारे सैनिक सावधान हो जायँगे..." चंद्रभाल बोला।

"तुम विषधर से खेल रहे हो चंद्रभाल !"

"विषधर के दाँत तोड़ने के लिए मेरे हाथ सशक्त हैं, महाशय!" बोला चंद्रभाल—"पर मैं कुछ पल तक तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूँगा। हमारी विद्रोही सेना जब प्रमुख द्वार से राजप्रसाद में प्रवेश कर जायगी, तब तुम्हारा विचार करूँगा। आते समय मै प्रवेश द्वार के प्रहरियों को यह आदेश दे आया हूँ कि द्वार खुला रखा जाय, पाटलीपुत्र से सेना आ रही है..."

निमिषमात्र में उसने कृपाण खींच ली।

"देखता हूँ, तुम्हारी रण-लालसा अभी शांत नहीं हुई है..." कहते हुए चंद्रभाल ने भी म्यान से कृपाण बाहर खींच ली।

भयानक झंकार के साथ दोनों कृपाण आपस में जा टकराये।

झन्न-झन्न का शब्द प्रकोष्ठ की दीवारों को प्रताड़ित कर उठा। तीव्र वेग से दोनों विपक्षियों के कृपाण नृत्य करने लगे।

"चंद्रभाल ! मौर्य साम्राज्य की नींव कच्ची ईंटों से नहीं, पाषाण द्वारा निर्मित है..."बोला तक्षशिलाधीश।

"हमारा विद्रोह लौह-दण्ड है, जो उस पाषाण को चूर-चूर कर देगा..."

चंद्रभाल ने एक गहरा आघात तक्षशिलाधीश पर किया।

उसी क्षण तक्षशिलाधीश चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा।

उसी समय कुछ सैनिकों के साथ कांचनमाला ने वहाँ प्रवेश किया।

"क्या हुआ देवि ?" अत्यन्त उत्सुकता से पूछा चंद्रभाल ने।

"हमारी पूर्ण विजय !..." कांचन ने उत्तर दिया—"सब राजकर्मचारी बन्दी बना लिये गये हैं और तक्षशिला की समस्त राजसेना ने हमारी अधीनता स्वीकार कर ली है..."

"श्रेष्ठ हुआ..." चंद्रभाल बोला—"देवि कांचनमाला, कल आपको तक्षशिला के सिंहासन पर बैठा हुआ देखकर, संतोष की सांस लूँगा मैं..."

"ऐसा ही होगा चंद्रभाल ! तुम्हारी अनवरत चेष्टा ने मुझे ध्येय-प्राप्ति में अद्भुत सहायता पहुँचायी है...मैं चिर-कृतज्ञ रहूँगी..."

"कृतज्ञता के लिए धन्यवाद ! परन्तु आप सेवक-मात्र समझिये मुझे। इससे अधिक की कामना मैं नहीं रखता।"

"तथास्तु बन्धु गोपक ! अब तक्षशिलाधीश को बन्दीगृह भेजने का प्रवन्ध करो..." कांचन ने कहा—"और कल प्रातःकाल ही पौर-सभा का आयोजन होना चाहिये। वहीं राजबन्दियों के अपराध पर विचार होगा..."

"जो आज्ञा..."

चंद्रभाल बोला।

दूसरे दिन।

तक्षशिला एक स्वतन्त्र प्रांत घोषित हुआ।

प्रजा ने हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाया।

दोपहर के लगभग पौर-सभा एकत्रित हुई। नगर के सभी प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे।

काँचनमाला, चंद्रभाल आदि विद्रोही नेता भी उपस्थित थे—

परन्तु राजसिंहासन अब तक रिक्त था।

जब पौर-सभा में चारों ओर सन्नाटा छा गया तो कांचनमाला उठीं।

नगरवासियों ने हर्ष-ध्वनि की।

"सज्जनों !..."कांचन बोली—"आज हमने वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त की है। आदरणीय चंद्रभाल के बुद्धि-चातुर्य से, हमने शासनसत्ता की जड़ उखाड़ फेंकी है आज हमारी क्रांति की ज्वाला ने शांति के पुजारी मौर्यसम्राट का गर्व चूर कर डाला है। अब

परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़े हुए हम असमर्थ मानव नहीं है...हम अब अपनी इच्छानुसार शासन प्रबन्ध कर सकते हैं..."

"मेरा विचार है कि प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना की जाय..." गोपक चंद्रभाल ने सर्वप्रथम अपना विचार व्यक्त किया।

"ठीक कहते हो बन्धु, गोपक !...." कांचन बोली—"प्रजा अपने लिये, एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि तथा कुछ साधारण प्रतिनिधि चुनेगी और वे लोग शासन-भार ग्रहण करेंगे। प्रजा को जब कभी किसी प्रतिनिधि के कार्य से असन्तोष होगा तो उसे अधिकार होगा कि वह उस प्रतिनिधि को पदच्युत कर दे..."

"हम देवी कांचनमाला को अपना प्रतिनिधि मनोनीत करते हैं..." चंद्रभाल ने प्रस्ताव किया।

"हम सबको स्वीकार है...."नगरवासियों ने एक स्वर से प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

और कांचन सर्वसम्मति से प्रतिनिधि मनोनीत हुई।

इसके बाद एक साधारण प्रतिनिधि-मण्डल की स्थापना हुई, जिसका नायक चंद्रभाल चुना गया।

तत्पश्चात् चंद्रभाल ने उठकर कांचनमाला को सम्बोधित कर कहा—

"अब हम देवी कांचनमाला से निवेदन करते हैं कि वे सिंहासन को सुशोभित करें !..."

"प्रजा की आज्ञा शिरोधार्य है ?..."

कहकर कांचन सिंहासन पर जा बैठी।

प्रजा ने स्वातन्त्र्य की साक्षात् प्रतिभा को सादर अभिवादन किया।

"राजबन्दियों को उपस्थित किया जाय !..."आज्ञा दी कांचन ने।

"जो आज्ञा प्रतिनिधि-श्रेष्ठ...."चंद्रभाल ने कहा।

सैनिकों से घिरे हुए सम्राट अशोक और तक्षशिलाधीश उपस्थित किये गये।

ज्योंही दोनों की दृष्टि सिंहासन की ओर गई, वे दोनों चौंक पड़े, कांचनमाला को उस पर आसीन देखकर।

कांचनमाला की मुखाकृति अतिशय गम्भीर थी।

"कांचन! ...कांचन!" हर्षातिरेक से चिल्ला उठे सम्राट।

परन्तु चंद्रभाल ने उन्हें सावधान किया—"बन्दी सम्राट महोदय, शिष्टाचार का सीमोल्लंघन दण्डनीय है, इसे न भूलिये..."

सम्राट अशोक को महान ग्लानि हुई, अपनी ही प्रजा द्वारा अपमान होते देखकर।

"देवी कांचनमाला हमारी साम्राज्ञी हैं...." पुनः बोला चंद्रभाल—"इन्होंने ही हमारे स्वातन्त्र्य-युद्ध में हमारा नेतृत्व किया है..."

"............"

आश्चर्यपूर्ण स्थिर दृष्टि से देखा सम्राट ने कांचन की ओर, परन्तु कांचन दूसरी ओर देख रही थी। सम्राट के प्रकाशमान नेत्रों की ओर देखने का साहस कांचन को नहीं हो रहा था।

एक बार कांचन के मुख की ओर देखकर सम्राट ने पुनः मस्तक नीचा कर लिया। कुछ बोले नहीं।

"बन्दी तक्षशिलाधीश का अपराध उपस्थित करो..." कांचन ने आज्ञा दी।

काँप उठा तक्षशिलाधीश। उसे आँखों के सामने मृत्यु नर्तन करती दृष्टिगोचर हुई।

चंद्रभाल ने उसी रीति से जैसे उसने युवराज कुणाल के समक्ष तक्षशिलाधीश का अपराध प्रमाणित किया था, आज भी किया।

"सम्राट, अकाट्य प्रमाणों द्वारा तक्षशिलाधीश के अपराधों की तालिका सुन रहे थे। आज उन्हें मालूम हुआ कि प्रजा के असंतोष का मुख्य कारण तक्षशिलाधीश का दुर्व्यवहार है।

"देवि !...." चंद्रभाल बोला —"अपराधी का अपराव प्रमाणित हो चुका ! अब दण्डाज्ञा सुनाने की कृपा करें...."

कुछ सोचती रही कांचन। पश्चात् एकाएक उठ खड़ी हुई। उसके नेत्र लाल-लाल हो उठे। इस समय वह सैनिक-वेश में थी। उसकी मुखाकृति पर तेज प्रकाशमान था।

"अपराधी ने प्रजा को पीड़ित करने के लिये निकृष्टतम उपायों का आश्रय लिया था..." बोली वह—"अतः प्रजा को पीड़ित करने तथा उनपर दुराचार करने के अपराध में उसका एक हाथ तथा एक पैर काट दिये जायँ..."

"एक आँख फोड़ दी जाय..."

"देवि ! दया ! क्षमा !" तक्षशिलाधीश के मुख से इसके अतिरिक्त दूसरा वाक्य ही नहीं निकल रहा था।

कांचनमाला की मुखाकृति प्रलयंकर हो उठी।

रणचण्डी-सी गरज कर बोली—"और कानों में तप्त धातु छोड़ दी जाय...."

"........."

चेतनाहीन होकर गिर पड़ा तक्षशिलाधीश।

"दूसरे अपराधी को उपस्थित करो..." कांचन का कठोर स्वर, शांत एवं भयमिश्रित वातावरण में गूँज उठा।

"..........." सम्राट ने कांचन की ओर देखा।

कांचन की प्रज्वलित आँखें सम्राट को घूर रही थीं।

सम्राट ने सर नीचा कर लिया।

"दूसरे बन्दी का अपराध और भी गुरुतर है..." चंद्रभाल बोला—"प्रथम अपराध तो यह है कि तक्षशिलाधीश के अपराध का जो निर्णय युवराज कुणालदेव के समक्ष हुआ था, और जिसका पूर्ण विवरण सम्राट के पास भेजा गया था, उसपर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया...कोई उत्तर तक न दिया...."

"..........."

चुपचाप सुन रहे थे सम्राट, अपने उपर लगाये अभियोगों की [illegible]का।

परन्तु इस अभियोग की बात उनकी समझ में न आई, क्योंकि [युव]राज कुणाल का कोई पत्र उनको नहीं मिला था।

"दूसरा अभियोग यह है कि सम्राट ने प्रजाप्रिय युवराज को [दण्]डित करने के लिए तक्षशिलाधीश के पास आज्ञापत्र भेजा था..." [च]न्द्रभाल ने कहा।

"........." चौंक पड़े सम्राट।

"तीसरा यह कि सम्राट ने, युवराज पर उस आज्ञापत्र में विद्रो-हियों की सहायता करने का अपराध लगाया था और उन्होंने यह दण्ड दिया था कि उन्हें नेत्रहीन कर निर्वासित कर दिया जाय..."

"क्या कहते हो, चन्द्रभाल!..." इस बार चिल्ला पड़े सम्राट।

"सम्राट की इसी आज्ञा के कारण युवराज ने स्वयं अपने नेत्र, दान कर दिये और भिक्षु होकर न जाने कहाँ चले गये..."

"क्या कहा..." आर्तनाद कर उठे सम्राट—"उसने अपनी आँखें लुटा दीं? युवराज, यह तुमने क्या किया? किसने तुम्हें ऐसी आज्ञा दी?...किसने तुम पर यह अपराध लगाया?...किसने तुम्हारे साथ शत्रुता का आचरण किया?..."

सम्राट को शोक-विह्वल देखकर सभी चकित हो गये।

पहले तो पुत्र को दण्ड देना और पीछे उसपर पश्चात्ताप करना, यह नीति किसी की समझ में न आई।

सम्राट विक्षिप्त-से हो रहे थे।

"युवराज! तुम कहाँ हो?...कहाँ चले गये? तुम्हें यह कैसे विश्वास हुआ कि वह पिता, जो तुम्हारे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता था—वह पिता, जिसने तुम्हें अपने नयनों की ज्योति समझा था—

वह पिता, तुम्हें इस प्रकार दण्ड कैसे दे सकता है?....कैसे दे सकता है कुणाल, मेरे बच्चे!..."

चन्द्रभाल विस्मयपूर्ण मुद्रा से खड़ा था।

कांचनमाला भी चकित थी, सम्राट का पागलपन देखकर।

सम्राट चिल्ला रहे थे—

"युवराज कुणाल !....मैं अस्वस्थ होकर मरण-शैया पर पड़ा था—राजकार्य तिष्यरक्षिता देख रही थी....परन्तु उसने तो मुझे तुम्हारे विषय में कोई समाचार नहीं दिया था....तुम नेत्रहीन होकर दर-दर भटकने के लिये चले गये...ऐसा क्यों किया तुमने ?...क्यों किया, कुणाल ?..."

और सम्राट अशोक कटे वृक्ष की तरह धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े।

उन्हें प्रबल मानसिक आघात पहुँचा था। वे चेतनाहीन हो गये थे चंद्रभाल ने आगे बढ़कर उन्हें सम्हाला।

कांचनमाला चित्रलिखित-सी खड़ी थी। सम्राट के मुख से यह सुनकर कि वे बहुत दिनों तक अस्वस्थ थे और राज्यकार्य तिष्यरक्षिता देख रही थी, कांचन के हृदय में एक प्रबल आशंका उठ खड़ी हुई।

वह जानती थी कि तिष्यरक्षिता युवराज के प्राणों की भूखी थी और वह उनके प्राण लेने का प्रयत्न कर चुकी थी। हो सकता है कि तिष्यरक्षिता ने ही गुप्तरूप से वह आज्ञापत्र भेजा हो ?

कांचन का मस्तिष्क दुरूह चिन्ताओं से भर उठा था। उसने पौर-सभा समाप्त करने की आज्ञा दी।

सब लोग चले गये तो कांचन ने अपने संशय की बात चंद्रभाल से कही। चंद्रभाल भी निस्तब्ध रह गया सुनकर।

कई घण्टों के उपचार के बाद वृद्ध सम्राट को चेतना आई।

"बेटा कुणाल !..."

चंद्रभाल ने देखा कि तेजस्वी सम्राट की आँखें अश्रु-वर्षा करने लगी थीं।

"सम्राटदेव !..." चंद्रभाल बोला—"अपने हृदय को संयत करें

...दर्शी देव ! हम सब पूर्ण अन्धकार में थे। आप हमारा सन्देह दूर करने की कृपा करें !...."

और चंद्रभाल ने एक पत्र सम्राट के सामने रख दिया।

यही वह आज्ञा पत्र है, जिसमें युवराज के लिए दण्डाज्ञा का आदेश है।

उसपर दृष्टि पड़ते ही सम्राट काँप उठे। उन्होंने प्रकम्पित हाथों द्वारा वह पत्र ले लिया और पढ़ने लगे।

उसे समाप्त कर चुकने पर, सर पीट कर विलाप कर उठे वे।

"क्या बात है, सम्राटदेव ?..." पूछा चंद्रभाल ने।

"यह तिष्यरक्षिता की हस्तलिपि है...." सम्राट बोले—"मैं नहीं जानता था कि वह नागिन बनकर युवराज को डँसेगी। मैं अस्वस्थ था चंद्रभाल !...राज्य की देख-भाल तिष्यरक्षिता कर रही थी, उसी ने यह सब किया है..."

दूर खड़ी कांचनमाला के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। उफ ! तो सम्राट निरपराध हैं—अपराधी है तिष्यरक्षिता ?

"मुझे एक बार मुक्त कर दो तुम लोग..." दीन-वाणी में सम्राट चंद्रभाल से बोले—"मैं पाटलीपुत्र जाकर उस दुष्टा को समुचित दण्ड देना चाहता हूँ, तभी मेरे हृदय की ज्वाला शांत होगी...मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तिष्यरक्षिता को उसके अपराध का दण्ड देने के पश्चात् तुम लोगों के पास पुनः बन्दी के रूप में आ जाऊँगा...तब तुम लोग मेरे अपराध का दण्ड देना...."

"......" चंद्रभाल का हृदय भर आया, सम्राट की महानता देखकर।

"मैं प्रजा को दुःखी नहीं देखना चाहता !..." सम्राट कह रहे थे—"प्रजा को यदि मुझे दण्डित करने में ही सुख है, तो मैं दण्ड स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ....परन्तु एक बार मुझे पाटलीतुत्र जाने दो चंद्रभाल, केवल एक बार....!"

बच्चों-सा रो पड़े सम्राट।

"अब आप बन्दी नहीं हैं, प्रभो !.." चंद्रभाल बोला—"अब आप हमारे देवाधिदेव हैं..."

"क्या कहते हो, चंद्रभाल ?...." सम्राट एक आँख से हँस रहे थे और दूसरी आँख से रो रहे थे।

"हम आप जैसे महान् सम्राट को कष्ट देकर दुःखित हैं, देव !" चंद्रभाल ने सम्राट के पैरों पर अपना सिर रख दिया।

"उठो बच्चे !..." सम्राट बोले—"तुम वीर हो, मैं तुम्हारा आदर करता हूँ....कांचनमाला कहाँ है ?"

"देव !...."

दौड़ती हुई कांचन आकर सम्राट के पैरों से लता की तरह लिपट गई।

फूट-फूटकर रोने लगी वह।

सम्राट भी रोने लगे।

"पुत्री ! कुणाल चला गया तो क्या हुआ ? तुम और सम्प्रति तो मेरे पास रहोगे...तुम दोनों को ही देखकर सुख से मर सकूँगा मैं..."

"मुझे क्षमा करें, पिताजी !" कांचन बोली।

"पुत्री !..." सम्राट ने कहा—"तुम आदर्श वधू हो। तुमने विप्लविनी होकर अन्याय के प्रति संघर्ष किया है—यह कार्य तुम्हारा सराहनीय है—महाशय चन्द्रभाल !..." सम्राट ने चन्द्रभाल को पुकारा।

"आज्ञा देव !"

"तुम हमारे पाटलीपुत्र प्रस्थान करने का प्रबन्ध कर दो। अब तक्षशिला में तुम्हारे द्वारा स्थापित प्रजातन्त्र शासन ही रहेगा। मैं अपने अन्य प्रान्तों में भी, इसी प्रकार की शासन-व्यवस्था का प्रबन्ध करूँगा..."

"आप आदर्श सम्राट हैं, पूज्यपाद !..."

"कांचनमाला मेरे साथ जायगी...." सम्राट बोले—"अतः उसके पर मैं तुम्हें प्रतिनिधि-श्रेष्ठ नियुक्त करता हूँ..."

"मैं एक वचन आपसे चाहती हूँ, सम्राटदेव! तभी आपके साथ पुत्र चल सकूँगी...."

कांचन माला बोली।

"मैं वचन देता हूँ, तुम्हारी प्रत्येक बात मुझे मान्य होगी...." ाट ने कहा—"बोलो, क्या चाहती हो तुम?"

"अपने पति की दुर्दशा मैंने अपनी आंखों से देखी है। प्रति-ग्नि की भयंकर ज्वाला मेरे हृदय में जल रही है। मैं अपराधिनी रक्षिता को स्वयं न्याय-दण्ड सुनाना चाहती हूँ। मैंने यह प्रण है, कि जो मेरे पति की दुर्दशा का कारण है, उसे नष्ट करके रहूँगी..."

"मुझे स्वीकार है, बेटी कांचन!...." सम्राट बोले—"तिष्यर-ा के लिए मेरे हृदय में प्रबल क्रोध उमड़ आया है और मैं चाहता कि स्वयं ही दण्ड दूँ, परन्तु उसे दण्ड देने का प्रथम अधिकार हारा ही है..."

"देव, कब प्रस्थान करेगें आप?..." पूछा चन्द्रभाल ने।

"कल प्रातःकाल..." सम्राट बोले—"बन्दी तक्षशिलाधीश भी साथ जायगा। अभी उसपर और अपराध प्रमाणित होंगे। सने मुझे लिखा था कि युवराज कुणाल स्वेच्छा से भिक्षु होकर ाटन को चले गये हैं—दुष्ट कहीं का?"

"मालूम होता है कि राजमहिषी और तक्षशिलाधीश ने मिलकर के साथ षड़यन्त्र रचा था।" चन्द्रभाल ने विश्वासयुक्त स्वर कहा।

"सत्य है तुम्हारा अनुमान।" सम्राट बोले।

१२

आज कुस्तान में अपूर्व समारोह है। नगर में एक महती बौद्ध-सभा का आयोजन किया गया है।

दूर-दूर से भिक्षुप्रवर तथा बौद्ध-विद्वान् पधारे हुए हैं।

कुक्कुटराम विहार के संघस्थविर महात्मा यश भी पधारे हैं।

सभा में जनसमूह लहरा उठा है। विद्वानों के भाषण सुनने के लिए लालायित जनता उमड़ पड़ी है।

योग्य भिक्षु-विद्वान् भाषणदाताओं की श्रेणी में बैठे हैं तथा साधारण भिक्षु, श्रोतागणों की श्रेणी में।

सभा में पूर्ण निस्तब्धता है।

सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ तो सर्वप्रथम भिक्षु-विद्वानों के भाषण होने लगे।

श्रोतागण वह पावन भाषण सुनकर तृप्त हो उठे।

सबके पश्चात् महात्मा यश उठ खड़े हुए।

लोगों ने उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से, अपूर्व प्रतिभासम्पन्न और देदीप्यमान उनके मुख की ओर देखा।

"श्रोतागणों!..." महात्मा यश बोले—"इस सभा में, सुयोग्य विद्वानों ने, अपने मतानुसार भिन्न-भिन्न विषयो पर अपने सद्विचार प्रकट किये हैं....आज मैं आपके समक्ष मनुष्य-योनि की सार्थकता पर अपना मन्तव्य प्रकट करना चाहता हूँ।

"........"

नीरव सभा महात्मा के प्रत्येक वचन ध्यानपूर्वक सुन रही थी।

"मूल विषय पर आने के पूर्व हमें यह जानना परमावश्क है कि जन्मधारण करने से प्रथम मनुष्य क्या था और किस शक्ति तथा

न वस्तुओं के मिश्रण से उसकी रचना हुई ?...मनुष्य प्रकृति का
न है और प्रकृति की अद्‌भुत शक्ति द्वारा ही संचालित होता है।
के प्रत्येक कार्य प्रकृति के आधीन होते हैं...."

"तो जन्म धारण करने से पहले मनुष्य क्या था, महात्मन् ?"
सी ने पूछा।

"वीर्य-स्रोत में एक कीट, मनुष्य-रूप में विद्यमान था..."महात्मा
ने उत्तर दिया—"उस वीर्य-कीट ने गर्भ में जाकर जीवात्मा का
प धारण किया और समय आने पर मनुष्य के रूप में अवतरित
आ....अब प्रश्न यह उठता है कि इस वीर्य-कीट की उत्पत्ति कैसे
और किससे हुई ?...वीर्य-कीट का जन्मदाता अन्न है जिसे मनुष्य के
पिता ने भक्षण किया था और जिससे वीर्य-कीट की सृष्टि हुई....अन्न
की, उत्पादनकर्त्री तथा पोषिका पृथ्वी है, अतः यह भली प्रकार सिद्ध
हो चुका कि जन्म-धारण करने के पहले, मनुष्य पृथ्वी का एक लघु
कण था—उसने पोषक तत्व बनकर अन्न में प्रवेश किया। अन्न को
मनुष्य के पिता ने भक्षण किया, जिससे वीर्य-कीट की सृष्टि हुई और
वीर्य-कीट ने गर्भ में प्रवेश कर मनुष्य का सर्जन किया ...यही प्रकृति
का नियम है..."

"......" सभा का ध्यान महात्मा के शब्दों पर केन्द्रित था।

"परन्तु जन्म-धारण करने से ही मनुष्य, प्राकृतिक नियम से
छुटकारा नहीं पा जाता....उसे प्रकृति का दास बनकर भिन्न-भिन्न
परिवर्तन सहन करने पड़ते हैं—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था
और मृत्यु—ये सब प्राकृतिक प[illegible] के ही द्योतक है..."

"मृत्यु के पश्चात् मानवीय शरीर की क्या गति होती है,
देव ?..."किसी दूसरे ने प्रश्न किया।

"मृत्यु के पश्चात् मनुष्य अग्नि द्वारा जलकर पुनः पृथ्वी का एक
लघु कण बन जाता है, जिससे कि उसकी सृष्टि हुई थी...लघुकण
बनकर वह पुनः पोषक तत्व के रूप में अन्न में प्रवेश करता है। यदि

इस बार उसे किसी पशु-पक्षी ने भक्षण किया तो वह उसी पशु-पक्षी विशेष का वीर्य-कीट बनकर, उसी रूप में अवतरित होता है..."

"यह विषय अत्यन्त गहन है, महात्मन् !..." श्रोतागण के मध्य से उठकर एक भिक्षु ने कहा—"क्या आप एकान्त में मुझे इस विषय पर वार्तालाप करने का समय दे सकेंगे ?...."

चौंककर महात्मा यश ने उस भिक्षु की ओर देखा।

यह भिक्षु नेत्रहीन था–पर मुखाकृति तेजपूर्ण थी।

उसकी आकृति देखकर एक क्षण के लिए विस्मित-से हो उठे महात्मा यश। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ।

"श्रीमन्महोदय ! आप यहाँ मेरे सन्निकट पधारने की कृपा करें।..."महात्मा ने कहा।

"मैं ज्योतिहीन हूँ, महात्मन् !...जन-समूह में से आपके निकट पहुँचना मेरे लिए दुष्कर है"

भिक्षु के इतना कहते ही एक श्रोता उठ खड़ा हुआ और उसने उस भिक्षु का हाथ पकड़ कर महात्मा यश तक पहुँचा दिया।

"भिक्षु ने हाथ से टटोल कर महात्मा के चरणस्पर्श किये।"

"महोदय का शुभ नाम ?..."महात्मा यश ने पूछा।

"भिक्षुओं के नाम और धाम से क्या प्रयोजन ?"भिक्षु ने कहा–"आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर दीक्षा दें, महात्मन् !..."

महात्मा यशने ध्यानपूर्वक उस नेत्रहीन भिक्षु की ओर देखा—

"आपकी मुखाकृति और मौर्यकुलभूषण धर्मविर्धन युवराज कुणालदेव की मुखाकृति में साम्य है क्या आप मेरी इस शंका का निवारण करेगें ?..."

उपस्थित लोगों ने देखा कि उस भिक्षु का गला भर आया है, और आँखों से दो बूँद मोती महात्मा के चरणों पर चू पड़े हैं।

"मैंने सुना था कि युवराज भिक्षु होकर देशाटन को चले गये हैं..."महात्मा ने पुनः कहा—"परन्तु युवराज नेत्रहीन नहीं थे और आप नेत्रहीन हैं, यह अन्तर है आप दोनों में...."

"महात्मन् ! कुणाल ही आपके समक्ष उपस्थित है .."भिक्षु ने गद्गद् स्वर में कहा—"मैं भिक्षु हो गया हूँ, परन्तु अब भी मुझे सांसारिक मोह-बन्धन पीड़ित कर रहा हैं। मुझे दीक्षा दीजिए, ताकि सांसारिक माया-मोह से विमुक्त होकर मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर हो सकूँ..."

महात्मा यश आश्चर्यचकित थे।

युवराज कुणाल की दुर्दशा देखकर उनके नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो उठे।

उन्होंने युवराज को उठकर हृदय से लगा लिया।

"उठो वत्स !...."वे बोले—"मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि तुम मायामद का त्याग कर वैराग्य-मार्ग पर अग्रसर हुए हो...यह अत्यन्त कल्याणकारी पथ है, कुणाल ! परन्तु इसपर चलने के लिए दृढ़ धारणा, कठोर साधना की आवश्यकता है..."

"मैं यथाशक्ति यत्न करूँगा, महात्मन् ?" कुणाल ने कहा।

सभा विसर्जित हुई तो महात्मा यश युवराज के साथ अपने निवासस्थान पर आये।

रात्रि में भोजनोपरान्त जब दोनों व्यक्ति बैठे तो महात्मा यश ने कहा—

"मैं तुम्हारे नेत्रहीन होने की कथा सुनना चाहता हूँ, कुणाल !...."

"वह एक दुःखपूर्ण विस्तृत-गाथा है, महात्मन !..."

"क्या मैं उसे सुनने का अधिकार नहीं रखता ?..."महात्मा यश ने पूछा।

"आप जितेन्द्रिय हैं—मेरे गुरु हैं..." युवराज बोले—"मुझे आपसे अपनी कथा कहने में तनिक भी संकोच नहीं।"

स्थिर वाणी से युवराज ने सारी कथा कह सुनाई।

महात्मा यश ने गम्भीरतापूर्वक सब सुना।

"तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है, कुणाल !..." अन्त में बोले वे—"यह किसी षड़यन्त्र का परिणाम है, मुझे दृढ़ विश्वास है कि

न्यायप्रिय प्रियदर्शी सम्राटदेव ने कभी ऐसा आज्ञापत्र नहीं प्रेषित किया होगा....''

''उस विषय पर अब विचार न करना ही श्रेयस्कर है, गुरु, देव ! ..'' युवराज बोले ।

''तुमने मौर्यवंश की कीर्ति उज्ज्वल की हैं, कुणाल ! तुम्हें सम्राट के पास ले चलकर उनसे न्याय की याचना करूंगा...''

''परन्तु महात्मन् ! मुझे निर्वासन का दण्ड दिया गया है...''

''कुणाल !...'' महात्मा बोले—''मैं धर्माचार्य हूँ, तुम भिक्षु हो ...हम तुम किसी भी स्थान पर आने-जाने के लिए स्वतन्त्र हैं। धर्मप्रचार के लिए न्यायाज्ञा का उल्लंघन सम्राट को भी अस्वीकार न होगा...''

''जैसी आपकी आज्ञा...''

''हम लोग शीघ्र ही पाटलीपुत्र प्रस्थान करेगें ।....''

१०

''कुक्कुटाराम विहार भिक्षुओं का एक विशाल मठ था। कई सहस्र भिक्षु उसमें रहा करते थे ।

महात्मा यश यहीं के संघस्थविर थे ।

दूर-दूर के नगरों से परिव्राजक तथा धर्माचार्य यहाँ आकर धर्म के तत्वों का समाधान किया करते थे ।

महात्मा यश और कुणाल, कुस्तान से कल आये हैं ।

अपनी जन्मभूमि की जलवायु में कुणाल का हृदय प्रफुल्लित हो उठा ।

प्रातः उपासना से निवृत्त होकर, महात्मा यश और कुणाल धर्म-विवेचना के लिये पास-पास बैठे ।

''वत्स कुणाल !....'' महात्मा बोले ।

''आज्ञा महात्मन् !...''

"एक बात कहूँ, मानोगे !...."
"आज्ञा कीजिये, भिक्षु प्रवर !..."
"अब हम राजनगर पाटलीपुत्र आ गये हैं न ?"
"हाँ महात्मन् ! तो अब आपका क्या विचार है ?..." पूछा नाल ने, स्थिर वाणी में।
"मेरा विचार पूछना चाहते हो ?"
"उत्सुक हूँ, महात्मन् !..."
"तो सुनो !...' महात्मा यश बोले—"मैं चाहता हूँ कि तुम र किये गये अन्याय का विवरण सम्राटदेव के समक्ष उपस्थित किया जाय और उनसे न्याय की माँग की जाय..."
"इससे कोई लाभ नहीं होगा...." युवराज ने कहा।
"क्यों ?..." महात्मा को आश्चर्य हुआ।
"अब मैं संसारिक मोह-माया त्याग कर वैराग्य-पथ की ओर अग्रसर हुआ हूँ..." युवराज बोले—"तो अब गत की ओर पुनः लौटना क्या उचित है, महात्मन् ?"
"तुम्हारा ध्येय उच्च है, वत्स कुणाल !..." महात्मा यश ने कहा—"परन्तु हमें उचित है कि सम्राटदेव की सेवा में इस घटना का निवेदन कर, उस षड़यन्त्र का भण्डाफोड़ करें....ऐसा न करने से हम अन्याय को प्रोत्साहन देंगें !..."
"न्याय और अन्याय का अन्वेषण करना तो राजकर्मचारियों तथा गुप्तचरों का काम है, महात्मन् !...." युवराज बोले—"हम भिक्षुओं का इस विषय को लेकर अग्रसर होना क्या ठीक है ?..."
"वत्स !..." महात्मा यश ने कहा—"न्याय धर्म है और अन्याय अधर्म...न्याय पुण्य है और अन्याय पाप....प्रत्येक धर्मावलम्बी भिक्षु का कर्त्तव्य है कि वह धर्म को प्रोत्साहन दे और अधर्म को दूर करे, पुण्य को केन्द्र-विन्दु मानकर पाप-भावना को भस्मीभूत करे और अन्तःकरण को शुद्ध बनाये...."

"जैसी आपकी इच्छा, देव ! मैं प्रस्तुत हूँ..." युवराज कुणाल बोले ।

"तो मैं सम्राटदेव को यहीं आमन्त्रित करता हूँ, उनसे अपनी कथा निवेदन करना, वत्स !..."

"सम्राट मुझे देखते ही अपने साथ चलने का हठ करेंगे, महात्मन् ! वे बिना मुझे साथ लिये जायेंगे नहीं..."

"तुम स्वेच्छा से भिक्षु बने हो !...." महात्मा यश ने दृढ़ स्वर में कहा—"वे तुम्हें नहीं ले जा सकते...."

"यदि उन्होंने विशेष हठ किया तो ?"

पूछा युवराज ने ।

"तो तुम उनके हठ को अमान्य कर सकते हो...."

महात्मा यश बोले ।

"जो आज्ञा महात्मन् !" युवराज ने नतमस्तक होकर कहा ।

महात्मा यश ने थोड़ी देर तक परिस्थिति पर मनन किया ।

और तब पुकारा—

"मण्डन !..."ओ भिक्षु मण्डन !..."

"आज्ञा देव !..."

तुरन्त ही एक युवक भिक्षु ने आकर अभिवादन किया और पूछा—"क्या आज्ञा है गुरुदेव ?"

"क्या कर रहे थे अबतक ?"

"नवीन भिक्षुओं को प्रारम्भिक शिक्षा दे रहा था, महात्मन् !..." मण्डन ने कहा—'अब देव जो आज्ञा दें पालन करने को प्रस्तुत हूँ मैं..."

"तुम इसी समय पाटलीपुत्र राजप्रसाद चले जाओ...."

"जो आज्ञा !"

"और सम्राट अशोकवर्धन देव की सेवा में मेरा यह संदेश दो कि अवकाश निकालकर, आज किसी समय विहार में पधारने का कष्ट करें..."

महात्मा ने कहा ।

"परन्तु महात्मन्...."

"कहो, क्या कहना चाहते हो मण्डन ?...."

"सम्राटदेव तो तक्षशिला में हैं।"

"कारण ?..."

"विद्रोह के शमनार्थ !...."मण्डन ने उत्तर दिया ।

"तो क्या तक्षशिला में पुनः विद्रोह उठ खड़ा हुआ है ?..." चकित होकर पूछा युवराज कुणाल ने ।

"हाँ युवराज !..."मण्डन ने कहा—"सुनने में आया है कि इस बार का विद्रोह अत्यन्त भयंकर हुआ है...."

"ओह !..." कुणाल ने मस्तक पकड़ लिया—"मालुम होता है कि कांचन और चन्द्रभाल ने यह विद्रोह खड़ा किया है—वे दोनों शांति-मार्ग छोड़कर क्रांति-पथ पर अग्रसर हुए हैं—ॐनमो बुद्धाय !"

"बिना क्रांति के मनुष्य शांति का महत्व नहीं समझता, कुणाल !" महात्मा बोले—"जब क्रांति द्वारा मनुष्य का मस्तिष्क बिकृत हो जाता है तो वह उस विकृत-मस्तिष्क के शोध के लिए शांति-पथ का अनुगामी बनता है...."

"वे दोनों सम्राटदेव के विरुद्ध क्रांति की सृष्टि कर, स्वयं अपने आपको नष्ट करने पर तुल गये हैं महात्मन् !"

"वत्स कुणाल !..."महात्मा ने स्थिर दृष्टि से कुणाल की ओर देखा—"तुम्हारे हृदय में अभी माया के प्रति मोह विद्यमान है... तुम अपने हृदय से मोह-बन्धन दूर करने का प्रयत्न करो....तुममें उनके विद्रोह या शांति से कोई लिप्सा नहीं रहनी चाहिए . तुम अपना कर्तव्य देखो, उन्हें अपना देखने दो..."

"......."

सर झुका लिया कुणाल ने ।

"मेरे लिए क्या आज्ञा है, महात्मन् !" मण्डन ने पुनः पूछा ।

"तुम आमात्यश्रेष्ठ के पास चले जाओ और उन्हें यहाँ आने का सन्देश दो..."महात्मा यश ने कहा।

"जो आज्ञा..."

मस्तक झुकाकर सादर प्रणाम करने के पश्चात्, मण्डन बाहर चला गया।

एक द्रुतगामी रथ पर चढ़कर वह पाटलीपुत्र राजप्रसाद आया।

आमात्यश्रेष्ठ उस समय कार्यव्यस्त थे, परन्तु संघस्थविर द्वारा प्रेषित भिक्षु का आगमन सुनकर उन्होंने उसे बुला लिया।

"आप कहाँ से पधारे हैं, भिक्षु श्रेष्ठ ?"

"कुक्कुटाराम बिहार से प्रभु !..."मंडन ने कहा।

"संघस्थविर महात्मा यश प्रसन्न तो हैं ?"

"वे अति प्रसन्न हैं, देव !...."

"कोई नवीन समाचार ?..."आमात्यश्रेष्ठ ने पूछा।

"देव को महाप्रभु ने स्मरण किया है..." मंडन बोला।

"क्या कोई विशेषकारण आ पड़ा है, भिक्षु ?"

"मुझे यह ज्ञात नहीं, श्रीमान् !...."

"अच्छा ! मैं अभी चलता हूँ..."आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

लगभग एक घड़ी के पश्चात् राज्यप्रासाद के प्रवेश-द्वार से आमात्यश्रेष्ठ का सुसज्जित रथ बाहर निकला। उसके पीछे भिक्षु मण्डन का रथ था। शीघ्र ही दोनों रथ कुक्कुटारामविहार पहुँच गये।

स्वयं महात्मा यश ने आमात्यश्रेष्ठ का स्वागत किया।

आमात्यश्रेष्ठ ने महात्मा के चरणस्पर्श किये।

"बहुत कष्ट हुआ आपको, आमात्यश्रेष्ट !..."महात्मा ने कहा।

"इस कष्ट की मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था, महाप्रभु!" आमात्यश्रेष्ठ बोले—"आपके दर्शन की लालसा थी, आज वह पूर्ण हुई।"

"सुना है, सम्राटदेव तक्षशिला गये हुए हैं ?"

"हाँ प्रभु !..." आमात्यश्रेष्ठ बोले—"वहाँ पुनः विद्रोहाग्नि भभक उठी है..."

"इसका कारण ?...."

"अज्ञात है महात्मन् !..." वृद्ध आमात्य ने कहा—"जबतक कुणालदेव वहाँ थे, तब तक तो शांति थी। अब फिर अशांति व्याप्त हो गई है..."

"युवराज कहाँ गये ?"

"तक्षशिलाधीश का पत्र आया था कि वे स्वेच्छा से बौद्ध होकर देशाटन को चले गये—सम्राटदेव इस घटना से अत्यन्त दुःखित हो उठे थे—"

"आमात्यश्रेष्ठ महोदय !...." महात्मा यश बोले—"आप वयोवृद्ध एवं अनुभवी है, फिर भी आप के रहते ऐसा अनर्थ कैसे हो गया ?..."

"क्या अनर्थ हुआ महाप्रभु ?..." चौंक पड़े आमात्यश्रेष्ठ।

"युवराज कुणाल स्वेच्छा से बौद्ध नहीं हुए...." महात्मा बोले।

"तो..."

"उन्हें सम्राटदेव की ओर से आज्ञा दी गई थी कि कुणाल की दोनों आँखें नष्ट कर दी जायें और तत्पश्चात् देश से निर्वासित कर दिये जायें..."

"यह आप क्या कह रहे हैं, महाप्रभु ?"

"सत्य कह रहा हूँ मैं, आमात्यश्रेष्ठ !"

"यह असम्भव है, महात्मन् !..." दृढ़ स्वर में बोले आमात्यश्रेष्ठ—"सम्राटदेव कभी ऐसी आज्ञा युवराज देव के लिए नहीं दे सकते। यदि उन्होंने ऐसी आज्ञा दी होती तो मुझसे अविदित न रहती..."

"तभी तो कहता हूँ कि यह किसी षड़यन्त्र का परिणाम है..."

"षड़यन्त्र ?..." चौंक पड़े आमात्यश्रेष्ठ।

उन्हें तिष्यरक्षिता का स्मरण हो आया, क्योंकि सम्राट के रुग्ण

होने पर वही राज्य-संचालन कर रही थी।

"क्या सोचने लगे, आमात्यश्रेष्ठ ? ..."

"यही सोच रहा हूँ महाप्रभु, कि इस षड़यन्त्र का सूत्रधार कौन हो सकता है ? "

"अनुमान से किस पर आपकी शंका है ?..." महात्मा यश ने पूछा।

"मेरी शंका एक पर जाकर स्थिर हो जाती है, प्रभु !..."

"किसपर ?"

"राजमहिषी तिष्यरक्षिता पर ..." बोले आमात्यश्रेष्ठ।

"क्या परिचारिकाश्रेष्ठी की बात कह रहे हैं, आप ? ..."

"जी महाप्रभु !..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"अब वह राजमहिषी हैं। इधर कई वर्षों तक आप अर्न्तधान रहे, इसी मध्य सम्राटदेव ने उसे राजमहिषी का पद प्रदान कर दिया है..."

"यह श्रेष्ठ नहीं हुआ, आमात्यश्रेष्ठ !... आपके रहते सम्राटदेव ने ऐसा आचारण क्यों किया ?"

"उस कृत्य के लिए उन्हें तब पश्चात्ताप होगा, जब वे इस षड़यन्त्र की कथा सुनेंगे..."

"युवराज का संसार नष्ट कर दिया इस नारी ने..." महात्मा बोले—"कुणाल ने उसे पिता की आज्ञा समझकर, अपने नेत्र नष्ट कर लिये और भिक्षु हो गये।

"क्या वस्तुतः वे चक्षु-विहीन हो गये हैं ?"

"हाँ ! आप कुणाल को देखकर अत्यन्त व्यथित होंगे..."

"कहाँ है युवराजदेव ?..."आमात्यश्रेष्ठ ने व्यग्रतापूर्वक पूछा।

"यहीं हैं..."

"यहीं हैं !..." हर्ष से उछल पड़े आमात्यश्रेष्ठ—"मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ, महाप्रभु !"

"आप शांत होकर बैठिये। मैं कुणाल को यहीं बुलाता हूँ..." महात्मा ने कुणाल को पुकारा—

"कुणाल !...वत्स कुणाल !"

चिर परिचित स्वर ने उत्तर दिया—

"आया महाप्रभु !"

दूसरे ही क्षण एक कृशकाय अन्ध-भिक्षु ने टटोलते हुए वहाँ प्रवेश किया।

कुणाल की दशा देखते ही आमात्यश्रेष्ठ की आँखें बरस पड़ी।

वे दौड़कर कुणाल के पैरों से लिपट गये।

"युवराजदेव ! यह क्या कर लिया आपने ?..."

युवराज चौंक पड़े, स्वर सुनकर।

"यह वाणी किसकी है ?..." युवराज ने कहा—"आमात्यश्रेष्ठ हैं क्या ?.."

"हाँ देव !...." रुद्ध वाणी में बोले आमात्यश्रेष्ठ—"बिना सोचे-विचारे आपने उस आज्ञापत्र के अनुसार कार्य क्यों किया ?"

"वह सम्राटदेव की—मेरे जन्मदाता की आज्ञा थी, आमात्य-श्रेष्ठ !..." कुणाल ने कहा।

वह राजमहिषी तिष्यरक्षिता का विष-वमन था।

"क्या कहते हैं आप, आमात्यश्रेष्ठ ?"

"आपको अपने मार्ग से हटा देने के लिये, वह साम्राज्ञी का षड्यन्त्र था...."

बोले आमात्यश्रेष्ठ।

"माता तिष्यरक्षिता के विषय में ऐसी बातें मैं नहीं सुनना चाहता..." रुक्ष स्वर में बोले कुणाल !

"आप निश्छल हैं, युवराजदेव ! आप दूसरों का कपट नहीं देख सकते..."

"मुझे युवराज न कहें, आमात्यश्रेष्ठ ! अब मैं कुणाल हूँ !"

युवराज की बातें सुन आमात्यश्रेष्ठ को अपार दुःख हुआ।

२१

सम्राट अशोक को तक्षशिला गये कई दिन व्यतीत हो चुके थे, परन्तु अब तक उनका कुछ भी समाचार नहीं मिल सका था।

तिष्यरक्षिता इसके लिए अत्यन्त चिंतित थी। वह यह भली प्रकार जानती थी कि सम्राट का तक्षशिला जाना उसके लिए हानिकारक हो सकता है। सम्भव है कि तक्षशिला जाकर सम्राट अशोक युवराज कुणाल के विषय की वास्तविक बातें जान जायें और तब वे उसे उसकी षड़यन्त्र-रचना के लिए दण्ड दें। यही सब सोचकर तिष्यरक्षिता ने सम्राट को तक्षशिला न जाने के लिये आग्रह किया था और सम्राट से इसके लिए प्रार्थना भी की थी! परन्तु सम्राट ने उसकी प्रार्थना ठुकरा-कर तक्षशिला प्रस्थान किया था। अपनी अवहेलना तिष्यरक्षिता के लिए असह्य थी, परन्तु वह सम्राट का निश्चय परिवर्तित न कर सकी। वह समझ गयी कि सम्राट आजकल उससे रुष्ट हैं। सम्राट के जाने के बाद, तिष्यरक्षिता ने पूर्ववत् साम्राज्य की बागडोर सम्भाल ली थी। परन्तु अब सम्राट का कोई समाचार न पाकर उसे चिन्ता हो रही थी। वह अपने प्रकोष्ट में स्वर्ण-पट्टिका पर लेटी थी और दुरूह चिन्ताओं के सागर में डूब उतरा रही थी।

"क्या मैं भीतर प्रवेश कर सकता हूँ, राजमहिषी?"

द्वार पर से किसी ने पूछा।

तिष्यरक्षिता ने सर उठाकर देखा—द्वार पर रुद्रसेन खड़ा था। वह हर्षित हो उठी।

"आओ रुद्रसेन!..." उसने कहा—"द्वार भीतर से बन्द कर लो।"

रुद्रसेन भीतर प्रविष्ट हुआ और द्वार बन्द करके राजमहिषी के पास आ खड़ा हुआ।

"बहुत चिन्तित दिखाई पड़ रहे हो, रुद्रसेन !..." पूछा तिष्य-रक्षिता ने।

"मैं तो राजमहिषी के लिये ही चिन्तित हूँ...." रुद्रसेन ने उत्तर दिया।

"मेरे लिये चिन्तित हो तुम ?...बात क्या है रुद्रसेन ? स्पष्ट कहो, मैं भी कुछ समझूँ...."

"साम्राज्ञी ! ..." धीरे से बोला रुद्रसेन–"कुस्थान से युवराज कुणाल को महात्मा यश अपने साथ लेकर आये हुए हैं...."

"युवराज कुणाल को लेकर यहाँ आये हुए हैं ?..." चौंककर बोली तिष्यरक्षिता—"परन्तु किसलिये ?"

"युवराज को सम्राटदेव के समक्ष उपस्थिय कर उनसे न्याय पाने की आकांक्षा से..." रुद्रसेन ने कहा।

राजमहिषी के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई।

"अब क्या होगा, रुद्रसेन !..." भयभीत स्वर में वह बोली।

"सम्राटदेव आपके सारे षड़यन्त्र से अवगत हो जायँगे और तब आपके लिए...."

"चुप रहो....चुप रहो, रुद्रसेन !" राजमहिषो ने रुद्रसेन से घबड़ाकर कहा—"कोई यत्न करो प्राण बचाने का कोई उपाय करो, रुद्रसेन !"

"उपाय केवल एक है, देवि !"

"निवेदन करो...."

"युवराज कुणाल सम्राटदेव के समक्ष उपस्थित न हो सकें, बस !"

"यह कैसे सम्भव हो सकता है ?" राजमहिषी ने पूछा।

"युवराज की हत्या से ...." तीक्ष्ण स्वर में बोला रुद्रसेन।

"........."

तिष्यरक्षिता विचारमग्न हो गई।

कदाचित् रुद्रसेन के विचारों से सहमत होने का प्रयत्न कर ही रही थी वह।

"राजमहिषी !...." पुनः बोला रुद्रसेन—"एक पाप छिपाने के लिये मानव अगणित पाप करता है। फिर युवराज तो नेत्रहीन हो चुके है। उनके लिए इस संसार से अन्तिम विदा ले लेना ही उत्तम है...."

"......." चुप थी तिष्यरक्षिता।

"मैं राजमहिषी के उत्तर की प्रतीक्षा में हूँ...." रुद्रसेन ने कहा। "ठीक है, रुद्रसेन !...." एक गहरी साँस लेकर बोली तिष्यरक्षिता—"किसी भी तरह युवराज की हत्या होनी ही चाहिये। मैं सम्राटदेव का क्रोध सहन नहीं कर सकूँगी..." रुद्रसेन ने साम्राज्ञी को अभिवादन किया और बाहर चला गया। और उसी दिन अर्द्ध-रात्रि को—

कुक्कुटाराम विहार की एक छोटी-सी कोठरी में युवराज कुणाल बैठे थे—अब तक उन्हें निद्रा नहीं आ सकी थी, अतः व्याघ्रासन पर बैठे हुए वे कुछ धार्मिक विषयों पर मनन कर रहे थे।

विहार के अन्य भिक्षु निद्रामग्न थे।

कुणाल की कोठरी के कपाट खुलने का धीमा सा शब्द हुआ और किसी के धीरे-से भीतर आने की आहट मिली।

"कौन है ? ..." पूछा युवराज ने।

"मैं हूँ देव ..." आगन्तुक ने कहा।

"..........."

मौन रहकर युवराज आगन्तुक के स्वर से उसे पाहचानने का प्रयत्न करते रहे।

"कौन...रुद्रसेन ?..." एकाएक युवराज ने पूछा।

"हाँ युवराज !...मैं रुद्रसेन ही हूँ।"

"आओ बैठो...."

"बैठने का अवकाश नहीं है, देव !...."

"माता तिष्यरक्षिता तो सकुशल हैं न ?...." पूछा युवराज ने।

"हाँ देव !...." रुद्रसेन बोला—"जब से राजमहिषी ने आपके आगमन के विषय में सुना है, वे आपसे मिलने के लिये अत्यन्त [illegible] हैं...."

"सम्राटदेव की अनुपस्थिति में साम्राज्य का सारा भार भी तो माता तिष्यरक्षिता पर हीं होगा !..."

"इसीलिए तो अवकाश कम मिलता है..."

"सम्राट का कुछ समाचार प्राप्त हुआ है ?..." युवराज पूछा।

"नहीं देव !...राजमहिषी को इसके लिए अत्यधिक चिन्ता है...."

"........."

कुछ सोचने लगे युवराज तो रुद्रसेन बोला—

"राजमहिषी तिष्यरक्षिता मठ के द्वार तक पधारी हैं...क्या श्रीमान् वहाँ तक पधारने का कष्ट न करेंगे ?"

"माता तिष्यरक्षिता पधारी हैं ?" युवराज आतुरता से बोले

"हाँ, मठ के प्रवेश-द्वार पर वे आप की प्रतीक्षा कर रही हैं !" रुद्रसेन ने कहा।

"याँह तक आने का कष्ट क्यों नहीं किया उन्होंने ?"

"उन्होंने सोचा रात अधिक व्यतीत हो चुकी है अतः मठ के निद्राभिभूत भिक्षुओं को कष्ट होगा..."

"भद्र रुद्रसेन !...."

"आज्ञा युवराजदेव !"

"मैं देख नहीं सकता..."युवराज बोले—"आप सहारा देकर मुझे माता तिष्यरक्षिता के पास तक ले चलें...उनकी सुमधुर वाणी सुने मुझे बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं...."

"चलिये युवराज !" युवराज उठ खड़े हुए। रुद्रसेन, उनका हाथ पकड़कर आगे, आगे चलने लगा। मठ के द्वार पर ही एक

विशाल रथ खड़ा था। तिष्यरक्षिता उपस्थित थी रथ में। वाणी में अमृत और हृदय में हलाहल लहरा रहा था उसके।

"आओ युवराज !..." कहा उसने।

"यह किसका स्वर है ?...माता तिष्यरक्षिता का ?...कहाँ हो माता ?...तुम कहाँ हो ?...."

"यहाँ हूँ युवराज ?....इधर आओ..."

तिष्यरक्षिता ने युवराज के बढ़े हुए हाथ को पकड़कर अपने पास खींच लिया। युवराज की दयनीय-दशा देखकर उसका हृदय हर्ष से नृत्य कर उठा। "ओह ! कितना सुखद स्पर्श है माता !.... बहुत दिनों पर यह शीतल स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ..."

"यह तुम्हारी क्या दशा हो गई, युवराज ?..."

"मैंने अपनी बाह्य-ज्योति खोकर आन्तरिक ज्योति प्राप्त की है तुम्हारे चरण कहाँ हैं माता ! मैं उन्हें मस्तक से लगाकर मातृ-ऋण से उऋण होना चाहता हूँ..."

तिष्यरक्षिता ने युवराज के हाथ पकड़ लिये। हर्षातिरेक से युवराज विभोर हो उठे। उन्हें पता ही न था कि उनके रथ पर बैठते ही रथ में गति आ गई है और वेगवान अश्व उसे अज्ञात दिशा की ओर खींचे लिये जा रहे हैं। रथ के आगे तथा पीछे सहस्त्र सैनिक हैं।

"सम्राट ने तुम्हारे साथ बहुत अन्याय किया है, युवराज !...."

"वे मेरे पिता हैं, उनकी आज्ञा का पालन कर मैंने उचित ही किया है...इसके लिए मुझे तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है..."

"तुम बहुत भोले हो, युवराज !...यही तुम्हारे दुःख का कारण है..." तिष्यरक्षिता बोली !

एकाएक रथ को गतिमान अनुभव कर वे चौंक उठे। वे अब तक यही समझ रहे थे कि रथ उसी स्थान पर खड़ा है।

"हम लोग कहां चल रहे हैं, माता ?..." पूछा युवराज ने।

"मृत्यु-मुख में ?"

नागिन ने, अपने अन्तराल का विष उगलना प्रारम्भ कर दिया,

...कि अब यह स्थान सुनसान और पहाड़ी था। युवराज ने तिष्य-रक्षिता की इस बात पर विशेष ध्यान न देकर, स्मित करते हुए निष्काम भाव से कह दिया—

"माता राजमहिषी के साथ मैं मृत्यु-मुख मे भी प्रवेश कर सकता हूँ..."

झटके के साथ रथ रुक गया। अनेक सैनिकों ने चारों ओर से रथ घेर लिया। रुद्रसेन ने निर्दयतापूर्वक युवराज का हाथ पकड़ कर रथ से नीचे खींच लिया। नेत्रहीन युवराज मुख के बल भूमि पर गिर पड़े। रक्त बह चला।

"माता तिष्यरक्षिता!" अधीर वाणी में बोले युवराज।

तिष्यरक्षिता ने आगे बढ़कर युवराज के मस्तक पर पद-प्रहार किया।

"नीच युवक? कितनी बार कह चुकी हूँ कि मुझे माता का सम्बोधन प्रिय नहीं..." गरज कर बोली वह।

युवराज का हृदय कराह उठा, अपनी दुर्दशा देखकर।

उनकी समझ में ही नहीं आया कि जो तिष्यरक्षिता कुछ क्षण पूर्व सहानुभूतिपूर्ण बातें कर रही थी, वह एकाएक हिंसक कैसे हो गई?

"मृत्यु-पथ के पथिक!...." कहने लगी तिष्यरक्षिता—"तूने मेरे प्रेम को ठोकर मारी थी, आज तू स्वयं ठोकर खा रहा है... देख लिया न कि तिरस्कृता नारी का प्रतिशोध कितना भयंकर होता है!..."

"देख तो सकता नहीं, माता!...." युवराज बोले—"अनुभव अवश्य कर रहा हूँ।"

"आज मैं तुम्हारे रक्त की प्यासी हूँ, कुणाल!..."

"यदि माता की प्यास पुत्र के रक्त से बुझ सके तो वह अपने को भाग्यशाली समझेगा...."

युवराज भूमि पर घुटनों के बल बैठ गये और मस्तक नीचे टेक दिया।

"रुद्रसेन !..." तिष्यरक्षिता ने कहा—"प्रतिशोधाग्नि में भस्म होने के लिए आहुति प्रस्तुत है... प्रहार करो ?"

"जो आज्ञा राजमहिषी !..."

रुद्रसेन ने अपना कृपाण हाथ में ले लिया और उसे दृढ़तापूर्वक पकड़ कर ऊपर उठाया।

"प्रहार करो, रुद्रसेन !...." तिष्यरक्षिता चिल्लाई।

रुद्रसेन का कृपाण चमक कर नीचे की ओर झुका।

उसी समय सरसराता हुआ एक तीर आकर रुद्रसेन की पीठ में प्रवेश कर गया।

आर्तनाद कर रुद्रसेन भूमि पर गिर पड़ा।

२२

रात्रि ने सम्पूर्ण अन्धकार समेट कर, प्रभात के प्रकाश में अपना कालिमाच्छन्न मुख छिपा लिया।

पूर्वाकाश पर इठलाती हुई ऊषा, बालसूर्य का आलिंगन कर मुस्करा पड़ी और जड़-चेतन, प्रातःजागरण का मधुर सन्देश पाकर हर्षोत्फुल्ल हो उठे। परन्तु तिष्यरक्षिता के अधरों पर न मुस्कराहट थी और न हृदय में हर्ष था ! उसे अब अपने चारों ओर न्याय-दण्ड का भयानक स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा था। वह व्याकुल थी अत्यन्त व्याकुल ! क्योंकि अपने बचाव का जो भी उपाय वह कर रही थी, उसी में वह असफल हो रही थी।

जब उसने सुना था कि महात्मा यश, कुणाल को कुस्तान नगर से यहाँ लेकर आये हैं, केवल इसीलिए कि उन्हें सम्राट के समक्ष उपस्थित करके न्याय की भिक्षा माँगी जाय—

तब से तिष्यरक्षिता के हृदय में मृत्यु की भीषण विभिषिका उथल पुथल मचा रही थी। वह चाहती थी कि किसी प्रकार युवराज का

न्त हो जाय और युवराज उसकी पोल खोलने के लिए सम्राट के समक्ष उपस्थित न हो सकें। इसलिए वह कल अर्द्धरात्रि के समय, रथ पर रुद्रसेन के साथ कुक्कुटाराम बिहार गई थी।

षड़यन्त्र यह था कि रुद्रसेन मठ के भीतर जाकर कुणाल को बाहर लायेगा और तब दूर जंगल में ले जाकर उसकी हत्या कर दी जायगी।

इस कार्य के लिए कई विश्वस्त सैनिक भी रथ के साथ थे।

रुद्रसेन मठ के भीतर गया और युवराज को मीठी-मीठी बातों के भुलावे में डालकर रथ तक ले आया।

तिष्यरक्षिता ने युवराज को अपनी मधुर बातों में अटकाये रक्खा, तब तक रथ निर्जन वन-प्रान्त में जा पहुँचा। रथ रुक गया और कुणाल के रक्त की प्यासी तलवार रुद्रसेन के हाथ में चमक उठी... और युवराज का मस्तक तुरन्त ही कट कर गिर गया होता, यदि पास ही कहीं से एक तीर आकर रुद्रसेन को न लगता और उसका लक्ष्य बहक न जाता। तीर लगने से रुद्रसेन उठ सकने में असमर्थ हो गया और अन्य सैनिक भी आश्चर्यचकित-से खड़े रह गये।

उसी समय न जाने कहाँ से अनेक सैनिक आकर राजमहिषी के सैनिकों पर टूट पड़े। घमासान युद्ध छिड़ गया। राजमहिषी तिष्य-रक्षिता इस आकस्मिक विपत्ति से एकदम घबड़ा उठी। और वह किसी प्रकार अपना प्राण लेकर निकल भागी। भागकर वह राजप्रसाद में जा पहुँची। उस समय दो घड़ी रात्रि शेष थी। तब से–प्रातःकाल होने तक, तिष्यरक्षिता के नेत्रों में नींद नहीं थी। दुस्सह चिन्ताओं में वह निमग्न रही। अपने को संयत करने के लिए उसने कई पात्र आसव भी पान किया, परन्तु उसकी चिन्ता कम नहीं हुई।

इस समय तिष्यरक्षिता एकदम पागल-सी हो रही है। सर के लम्बे बाल खुलकर पीठ पर लहरा रहे हैं।

आँखें गढ़े में धँस गई हैं, जिससे भय झाँक रहा है। कपोलों की लालिमा पर कालिमा छा गई हैं—छातियाँ बेचैनी के साथ उठ-बैठ रही हैं। विक्षिप्त-सी हो उठी है वह। प्रकोष्ठ में और कोई नहीं है—केवल वही है। साथ में उसकी बेचैनी है, उसका भय और उसका कलुषित हृदय है।

एकाएक वह उठी और पागलों की तरह कमरे में इधर-से-उधर घूमने लगी। उसके नेत्रों की भयाक्रान्त पुतलियाँ कोटरों में नाचने लगीं।

"नहीं....नहीं !..." वह अपने आप ही चिल्ला उठी—"मैं निरपराध हूँ, सम्राटदेव !....मैंने कोई अपराध नहीं किया है...मैंने कोई षड़यन्त्र नहीं रचा है...."

आकस्मिक आवेग ने उसे शिथिल कर दिया। थोड़ी देर तक चुप रहने के पश्चात् वह पुनः चिल्ला उठी—

"यह सब झूठा अभियोग है, देव !...कुणाल को मैंने नष्ट नहीं किया...उस आज्ञा-पत्र का आविष्कारक रुद्रसेन है...उसे दण्ड दीजिये, देव !"

हाथ मलने लगी तिष्यरक्षिता। पाप उसके सर पर चढ़ कर बोल रहा था। उसका षड़यन्त्र उसके नेत्रों से झाँक रहा था।

"नहीं, नहीं...." वह बड़बड़ाती रही—"सम्राटदेव मुझे दण्ड नहीं दे सकते कभी नहीं दे सकते...मैं निरपराध हूँ...मैं मृत्यु का आलिंगन करूँगी, परन्तु न्याय-दण्ड सहन नहीं कर सकूँगी...मैं मरूँगी....स्वयं मरूँगी...."

एकाएक दृढ़ निश्चय ने हर्ष का स्थान ले लिया और तिष्यरक्षिता हर्ष-विभोर हो प्रकोष्ठ में चहलकदमी करने लगी।

अकस्मात् रुकी। आसवपात्र लेकर उसमें आसव भरा और अपनी हीरक मुद्रिका का नग निकालकर उसमें छिपा हुआ विष, आसव में मिलाया—और पात्र उठाकर हाथ में ले लिया।

पौर-सभा में अपमानित और दण्डित होने के बदले तिष्यरक्षिता स्वयं आत्महत्या करना उचित समझा। इस समय उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर हो उठी थी। उसने पात्र उठाकर अधरों से लगाया ही था कि द्वार पर से किसी ने आज्ञा माँगी—

"क्या मैं भीतर प्रवेश कर सकता हूँ, साम्राज्ञी ?"

सहम कर तिष्यरक्षिता ने पात्र नीचे रख दिया और उस ओर देखा—

काँप उठी वह !

गम्भीर आकृति लिये आमात्यश्रेष्ठ खड़े थे द्वार पर।

तिष्यरक्षिता ने अपने को यथाशक्ति संयत किया और बोली—

"पधारिये महोदय !"

आमात्यश्रेष्ट स्थिर एवं गम्भीर मुद्रा में प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुए। उन्होंने ध्यानपूर्वक राजमहिषी की विवर्ण मुखाकृति की ओर देखा और फिर देखा उस आसव-पात्र की ओर।

"राजमहिषी आज अत्यन्त व्यग्र दृष्टिगोचर हो रही हैं ?..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

भय से सिहर उठा तिष्यरक्षिता का शरीर। वह जानती थी कि आमात्यश्रेष्ठ वृद्ध एवं अनुभवी हैं और मुखाकृति देखकर हृदय की भावना भाँप सकते हैं।

"...."

चुप रही तिष्यरक्षिता। कदाचित् आमात्यश्रेष्ठ की बातों का कोई उत्तर खोज रही थी।

"आपके नेत्र रक्तवर्ण हैं क्या साम्राज्ञी को रात्रि में निद्रा नहीं आई ?" पुनः पूछा आमात्यश्रेष्ठ ने।

"......"

राजमहिषी पूर्ववत् मौन रही।

"उस पात्र में आसव है ?...है न ?...." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—

"यह त्याज्य वस्तु राजमहिषी ने कब स्वीकार की ?"

"......"

तिष्यरक्षिता का शरीर अज्ञात भय से काँपने लगा।

वृद्ध आमात्य की दृष्टि से कुछ भी छिपा न था।

"मैं अपने प्रश्नों का उत्तर चाहता हूँ, राजमहिषी !..." तीव्र स्वर में बोले आमात्यश्रेष्ठ।

आमात्यश्रेष्ठ का तीव्र स्वर सुनकर चौंक पड़ी तिष्यरक्षिता। उसने आग्नेय नेत्रों से आमात्यश्रेष्ठ की ओर देखा।

आमात्यश्रेष्ठ स्थिर रहे—

बोले—"मेरे मन में प्रविष्ट शंका का समाधान करें, राजमहिषी !...."

"मैं आपके प्रश्न का उत्तर देना अस्वीकार करती हूँ..." तिष्यरक्षिता ने क्रुद्ध स्वर में कहा।

"यह निवेदन नहीं है, साम्राज्ञी !..." आमात्यश्रेष्ठ बोले—"यह आज्ञा है।"

"आज्ञा है !..." क्रोध से चिल्ला पड़ी तिष्यरक्षिता—"किसकी आज्ञा है ?...."

"आमात्यश्रेष्ठ की..."

"तो आप मुझे उत्तर देने के लिए विवश कर रहे हैं..." राजमहिषी ने कहा।

"अवश्य..."

"आप कर सकते हैं ऐसा ?"

"निश्चय !...."

"किस अधिकार से आप ऐसी अपमानजनक बातें कर रहे हैं ?"

"महामन्त्रित्व के अधिकार से..."

"जानते हैं, आप किससे बातें कर रहे हैं ?..."

"जानता हूँ, मैं राजमहिषी से बातें कर रहा हूँ..."

"फिर भी आप साम्राज्ञी को विवश करने का साहस करते हैं?..." तिष्यरक्षिता ने कहा।

"विवशता ने साहस को उभार दिया है, राजमहिषी!...और मैं यह भी जानता हूँ राजमहिषी, कि आसव में विष मिलाकर आप आत्महत्या करने जा रही थीं..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"यह भी जानता हूँ कि सम्राट की अनुपस्थिती में राजपरिवार की कुशलता का उत्तरदायित्व आमात्यश्रेष्ठ पर है और उत्तरदायित्व से असावधान रहने का परिणाम, भयानक दण्ड है..."

"......"

मस्तक नीचा कर लिया तिष्यरक्षिता ने।

आमात्यश्रेष्ठ ने आगे बढ़कर प्रकोष्ठ में लटकती हुई रेशम की डोर खींच ली। तुरन्त ही एक परिचारिका उपस्थित हुई।

"यह पात्र ले जाकर बाहर फेंक दो...." आमात्यश्रेष्ठ ने विषपूर्ण आसव-पात्र की ओर संकेत कर, परिचारिका को आज्ञा दी। परिचारिका ने पात्र उठा लिया और अभिवादन कर वह बाहर चली गई।

"आमात्यश्रेष्ठ...!" आग्नेय नेत्रों से देखती हुई तिष्यरक्षिता बोली—"तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु हो..."

"और सबसे बड़ा मित्र भी, राजमहिषी!..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"क्योंकि आपके सब षड़यन्त्र जानते हुए भी मैंने सम्राटदेव को सावधान नहीं किया और मेरी थोड़ी-सी भूल ने युवराज कुणालदेव का संसार नष्ट कर दिया...."

"क्या कहते हो तुम, आमात्यश्रेष्ठ!..." अपार आश्चर्य में भरकर बोली तिष्यरक्षिता।

"आपके प्रत्येक कार्य का मुझे पता है, साम्राज्ञी! स्थिर वांणी में बोले आमात्यश्रेष्ठ—"युवराज से आपका प्रणय-निवेदन भी मैं जानता हूँ"

"......"

"तिरस्कृत होकर आपने युवराजदेव तथा युवराज्ञी पर आखेट-भूमि में जो आक्रमण की योजना बनाई थी, वह भी मुझे विदित है..."

"तो तुम्हीं थे कांचन को मेरे गुप्त बन्दीगृह से मुक्त करने वाले ?" आश्चर्य से पूछा राजमहिषी ने।

"साम्राज्ञी का अनुमान सत्य है...." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"और कल अर्द्धरात्रि में नेत्रहीन युवराज को आपके भयानक षड्यन्त्र से बचाने वाला भी मैं ही हूँ, राजमहिषी।"

"ओह !..."

तिष्यरक्षिता ने अपना मस्तक पीट लिया। घबड़ाहट ने मुख पर श्वेत बिन्दुओं की सृष्टि कर दी।

"रुद्रसेन आहत होकर बन्दीगृह में पड़ा है..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा—"और सम्राटदेव के तक्षशिला से पधारने पर, आपके अपराधों की तालिका उनके समक्ष उपस्थित की जायगी..."

थर-थर काँप रही थी तिष्यरक्षिता।

"अब आप अपने को बन्दी समझें, साम्राज्ञी !..." आमात्यश्रेष्ठ ने कठोर स्वर में कहा।

क्रोधपूर्ण मुखाकृति से तिष्यरक्षिता ने आमात्यश्रेष्ठ की ओर देखा। उसकी घबड़ाहट क्रोध में परिवर्तित हो गई।

"तुम्हारा यह साहस कि तुम मुझे बन्दी बनाओ ?..."

"विद्युतगति से तिष्यरक्षिता ने पास लटकती रेशम की डोर खींच ली।

परिचारिका उपस्थित हुई।

"महाबलाधिकृत को शीघ्र उपस्थित होने की मेरी आज्ञा सुनाओ ?...."गरजकर बोली तिष्यरक्षिता।

"उपस्थित हूँ, साम्राज्ञी !..." प्रवेश करते हुए महाबलाधिकृत ने कहा।

राजमहिषी के समक्ष आकर उन्होंने अभिवादन किया।

"क्या आज्ञा है, साम्राज्ञी !..." पूछा उन्होंने।

"आमात्यश्रेष्ठ को ले जाकर कारागार में डाल दो...." तिष्य-रक्षिता ने आज्ञा दी।

"जो आज्ञा राजमहिषी ?" महाबलाधिकृत बोले—"चलिये ! आमात्यश्रेष्ठ महोदय !..."

महाबलाधिकृत ने आमात्यश्रेष्ठ का हाथ पकड़ लिया और वे प्रकोष्ठ से बाहर आ गये। बाहर आकर द्वार बन्द कर दिया। महाबलाधिकृत ने और सशस्त्र सैनिकों को आदेश दिया—"राजमहिषी बन्दिनी हैं। उन्हें बाहर निकलने की आज्ञा नहीं है...उनपर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है..."

उसके बाद आमात्यश्रेष्ठ और महाबलाधिकृत हँसते हुए एक ओर को चले गये।

२३

आमात्यश्रेष्ठ ने राजमहिषी तिष्यरक्षिता के साथ अपमानजनक व्यवहार किया था और सम्भव है कि सम्राट की दृष्टि में आमात्यश्रेष्ठ अपराधी प्रमाणित हों और उनको उसका दण्ड भी भुगतना पड़े।

परन्तु न्यायप्रिय आमात्यश्रेष्ठ को इसकी तनिक भी चिन्ता न थी, क्योंकि वे जानते थे कि उन्होंने राजमहिषी के साथ उचित व्यवहार किया है। उन्हें विश्वास था कि जब सम्राट तिष्यरक्षिता की षड़यन्त्र रचना से अवगत होंगे, तो आमात्यश्रेष्ठ की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। परन्तु एक बात थी जिसने आमात्यश्रेष्ठ को चिन्ता में डाल दिया। वह यह कि राजमहिषी को इस प्रकार अधिक दिनों तक बन्दिनी नहीं रखा जा सकता था और सम्राट के शीघ्र आने की आशा नहीं थी।

जब से सम्राट तक्षशिला गये थे, उनका कुछ भी समाचार नहीं

मिल सका था। इन्हीं सब चिन्ताओं में व्यस्त आमात्यश्रेष्ठ बैठे थे कि द्वारपाल ने भीतर प्रवेश किया और अभिवादन कर खड़ा हो गया।

"क्या है ?..." आमात्यश्रेष्ठ ने पूछा।

"एक सन्देश-वाहक द्वार पर उपस्थित है...आमात्यश्रेष्ठ का वह दर्शन करना चाहता है..." द्वारपाल ने कहा।

"कहाँ से आया है वह ?...."

"सब कुछ श्रीमान से वह स्वयं निवेदन करेगा..."

"उसे उपस्थित करो !..."

द्वारपाल चला गया।

थोड़ी देर बाद एक सन्देश-वाहक ने वहाँ प्रवेश किया।

आमात्यश्रेष्ठ के समक्ष सादर मस्तक झुकाया उसने।

आमात्यश्रेष्ठ ने साधुवाद देकर पूछा—"कहाँ से आ रहे हो तुम ? ....किसका सन्देश लाये हो ?"

"मैं श्रीमान् की सेवा में सम्राट का सन्देश लेकर आया हूँ..." उसने कहा।

"तक्षशिला में सम्राट सकुशल तो हैं न ?..."

"अब वे तक्षशिला में नहीं हैं, मन्त्रिवर !"

"तब कहाँ है वे ?"

"उन्होंने वहाँ से प्रस्थान कर दिया है...." वह बोला—"इस समय उनका शिविर यहाँ से सोलह योजन दूर पर है। राजनगर पाटलीपुत्र लौट रहे हैं !...."

"शुभ समाचार लाये हो तुम, पायक !..." आमात्यश्रेष्ठ प्रसन्नता पूर्वक बोले—"साथ में कौन-कौन हैं ? ..."

"सम्राटदेव के साथ हैं युवराज्ञी कांचनमाला, युवराजकुमार सम्प्रतिदेव तथा दस सहस्र सेना..." उसने उत्तर दिया।

"सम्राटदेव ने मेरे लिए कोई विशेष आज्ञा दी है..."

"जी हाँ श्रीमान् !..." वह बोला—"आपके लिये सम्राटदेव ने

एक अत्यन्त गुप्त सन्देश भेजा है और मुझे आज्ञा दी है कि मैं उसे केवल श्रीमान् से एकान्त में निवेदन करूँ..."

"एकान्त है....तुम निवेदन कर सकते हो...."आमात्यश्रेष्ठ बोले। सन्देश-वाहक ने निरीक्षात्मक दृष्टि से अपने चारो ओर देखा और तब धीरे से बोला—

"सम्राटदेव की आज्ञा है कि उनके पटलीपुत्र पधारने के पूर्व राजमहिषी तिष्यरक्षिता को बंदिनी बनाकर कारागार में डाल दिया जाय...."

"......"

चौंक पड़े आमात्यश्रेष्ठ, सम्राट की यह आज्ञा सुनकर।

महान हर्ष उनकी मुखाकृति पर प्रतिबिम्बित हो उठा।

"पायक !"

"आज्ञा श्रीमान् !...."

"सम्राटदेव की इस आज्ञा का कारण ?..." आमात्यश्रेष्ठ ने पूछा। "कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण और गुप्त है, श्रीमान् !"

"तुम्हें ज्ञात है ?"

"ज्ञात है देव !" पायक बोला।

"निवेदन करो..." आमात्यश्रेष्ठ ने आज्ञा दी।

"तक्षशिला जाकर सम्राटदेव को राजमहिषी के भयानक षड़यन्त्र का पता लगा. है...."

"कैसा षड़यन्त्र ?..."आमात्यश्रेष्ठ ने अनजान बनकर पूछा।

"राजमहिषी ने सम्राटदेव की ओर से एक आज्ञा-पत्र भेजा था, जिसमें युवराज कुणालदेव को नेत्रहीन कर निर्वासित कर देने की आज्ञा दी गई थी...तक्षशिलाधीश ने भी इस षड़यन्त्र में राजमहिषी का साथ दिया था। वे भी बन्दी बनाकर साथ में लाये जा रहे हैं..."

"श्रेष्ठ हुआ...." आमत्यश्रेष्ठ बोले—"तुम सम्राटदेव की सेवा में मेरी ओर से निवेदन करना कि मैं पहले ही राजमहिषी के षड़यन्त्र

से भिज्ञ हो चुका था और वे इस समय बन्दिनी हैं...और युवराज कुणालदेव भी महात्मा यश के पास सुरक्षित हैं !..."

"जो आज्ञा !"

सन्देशवाहक अभिवादन कर चला गया ।

उसके दस दिन बाद—

सम्राट अशोकवर्धन पाटलीपुत्र आ गये ।

आमात्यश्रेष्ठ ने विराट समारोह के साथ सम्राट का स्वागत किया। सम्राट को देखते ही अमात्यश्रेष्ठ ने उनके पैर पकड़ लिये ।

सम्राट ने गद्‌गद् होकर वृद्ध आमात्य को आदर-सम्मान सहित उठाया ।

"अधीरता आमात्य महोदय के लिए शोभनीय नहीं !..." उन्होंने कहा ।

"मुझे क्षमा करें, देव !...मैंने महान अपराध किया है..." आत्मश्रेष्ठ दीन वाणी में बोले ।

"मुझे विश्वास है, आमात्यश्रेष्ठ !..." सम्राट कहने लगे— "आपने जो भी अपराध किया होगा, उसमें मौर्यसम्राज्य के हित की भावना निहित होगी ...."

"सम्राटदेव अत्यन्त उदार हैं...आशा है मेरा अपराध क्षमा करेंगे आप...मैंने राजामहिषी को आपकी आज्ञा मिलने के पूर्व ही बन्दनी बना लिया था...."

"आपने उचित किया, आमात्यश्रेष्ठ ! इसके लिए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है..." सम्राट ने कहा ।

"सम्राटदेव धन्य हैं !"

"आमात्यश्रेष्ठ !..."

"आज्ञा देव !"

"आपने युवराज कुणाल के विषय में सन्देश भेजा था..."सम्राट ने कहा—"कहाँ है कुणाल ?"

"वे संघस्थविर में महात्मा यश के पास हैं ! अब वे भिक्षु हो गये हैं...सांसारिक मायामोह के प्रति उनके हृदय में अपार घृणा उत्पन्न हो गई है ."...'आमात्यश्रेष्ठ बोले।

"..........."

"सम्राट की मुखाकृति गम्भीर हो गई। वे कुछ सोचने लगे।

"मैंने सम्राटदेव के आगमन के विषय में उनसे निवेदन किया था..." आमात्यश्रेष्ठ बोले।

"तब क्या कहा कुणाल ने ?" उत्सुकतापूर्ण करुण वाणी में पूछा सम्राट ने।

"उन्होंने कहा कि वे निर्वासित हैं और बिना सम्राट की आज्ञा के, मठ के बाहर कहीं नहीं जा सकते .." आमात्यश्रेष्ठ बोले।

"परन्तु मठ भी तो मौर्यसाम्राज्य के अन्तर्गत है ?"

"मैंने यह बात उनसे कही थी तो वे कहने लगे कि मठ तो धर्म-भूमि है। यहाँ भगवान तथागत का निवास है, यहाँ तो पापी से भी पापी व्यक्ति पावन बन सकता है..." आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

"......."

सम्राट के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

२४

प्रातःकाल का मन्द समीरण नव-स्फूर्ति का संचार कर रहा था।

कुक्कुटाराम बिहार के प्रवेश-द्वार पर कई विशाल रथ आकर रुक गये।

एक भिक्षु ने दौड़ कर महात्मा यश को समाचार दिया।

महात्मा यश बाहर आये तो उन्होंने स्वयं मौर्यसम्राट अशोकवर्धन को खड़े देखा।

सम्राट ने आगे बढ़कर महात्मा के चरणस्पर्श किये।

"पधारिये सम्राटदेव !..." महात्मा बोले।

मठ के भीतर आकर सब यथायोग्य आसनों पर आसीन हुए।

"सम्राटदेव तक्षशिला से कब पधारे?..." पूछा महात्मा यश ने।

"कल संध्या बेला में आया हूँ, महाप्रभु !" सम्राट ने उत्तर दिया

"विद्रोह सकुशल समाप्त हुआ ?"

"हाँ महात्मन् !" सम्राट बोले—"राजकर्मचारियों द्वारा प्रजा उत्पीड़ित थी। विद्रोह का यही कारण था। हमने प्रजा को स्वशासन देकर, उसकी पीड़ा का शमन कर दिया है..."

"सम्राट देव महान हैं...." महात्मा बोले—"प्रजा को स्वशासन देकर आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है—"

"मैं प्रसंसा का पात्र नहीं महाप्रभु !...." सम्राट बोले—"अवहेलना ही मेरे लिये उपयुक्त है ?"

"आप यह क्या कहते हैं सम्राटदेव !"

महात्मा यश को सम्राट की बातें सुनकर अश्चर्य हुआ।

"मैं उचित ही कह रहा हूँ..." बोले सम्राट—'मैं घृणाका पात्र हूँ..."

"समाट का तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया..."

"आप सब कुछ जानते-समझते हैं, यहाप्रभु !..." आपकी दिव्य दृष्टि अद्‌भुत है। आप से कोई बात छिपी नहीं रह सकती..." सम्राट ने कहा—मैंने वृद्धावस्था में विवाह करके प्रजा के समक्ष एक अमानवीय उदाहरण उपस्थित किया है..."

"उचित कथन है आपका !...." महात्मा यश गम्भीर स्वर में बोले—"प्रजा सम्राट की अनुगामिनी होती है, अतः सम्राट को अपने आचरण और व्यवहार पर ध्यान रखना चाहिये..."

"मैं इस विवाह से अत्यन्त लज्जित हूँ, महात्मन् !..." सम्राट ने कहा—"तिष्यरक्षिता के ही कारण कुणाल पर अत्याचार हुआ। कल पौर-सभा में जब प्रजा इस बात को सुनेगी तो मुझे धिक्कारेगी ?"

"मुझे यह पहले से ही विश्वास था, सम्राटदेव ! कि कुणाल के

आपने कभी ऐसी आज्ञा नहीं दी होगी...."

"परन्तु दोष का भागी तो मैं ही हूँ, महाप्रभु ..." सम्राट बोले–
मेरी बुद्धिहीनता और असावधानता के कारण ही तो युवराज को
भीषण कष्ट सहन करने पड़े ?"

"आप यथार्थ कहते हैं, सम्राटदेव !....परन्तु कुणाल अब भिक्षुक
हो गया है। उसने कलुषतापूर्ण बंधनों से मुक्ति पा ली है—अब उसके
समक्ष कष्ट और आनंद, दुःख और सुख, घृणा और प्रेम का कोई मूल्य
नहीं। इसी प्रकार लगन से वह धर्म-विषयों के अध्ययन करता रहा,
तो एक दिन वह मौर्य साम्राज्य का ऐसा प्रकाण्ड विद्वान होगा, जिसकी
समता कोई न कर सकेगा..."

"कुणाल है कहाँ, महात्मन् ?"—पूछा सम्राट ने।

"वह सामने वाली कुटिया में प्राणायाम कर रहा होगा। समाप्त
करके वह स्वयं इधर आयेगा..." महात्मा ने कहा।

"मुझे बहुत पश्चात्ताप है, महाप्रभु !..." सम्राट बोले—"मैं
चिन्ता की ज्वाला में दग्ध हो रहा हूँ। युवराज के साथ जो अन्याय
हुआ है, उसकी स्मृति-मात्रसे मेरे हृदय का रक्त-मांस जल उठता है..."

"धैर्य ही सम्राट का भूषण है...."महात्मा ने कहा—"कार्मुक
से छूटा हुआ बाण पुनः लौटकर नहीं आता, प्रियदर्शी देव !... अब
कुणाल की स्मृति अपने हृदय से निकाल दीजिये।"

'यह किस प्रकार हो सकता है, महाप्रभु...?" दीन वांणी में
सम्राट ने कहा—"जिसे जन्म दिया, उसे जीते-जी कैसे भूल सकता
हूँ..."

"आप को भूलना ही होगा, सम्राटदेव !..." महात्मा यश ने
कहा—"आप का कुणाल शांति-पथ पर अग्रसर हो गया है। वह उस
पथ से विमुख नहीं हो सकता अब..."

"मौर्य साम्राज्य को कुणाल की आवश्यकता है, महात्मन् !"

"प्रियदर्शी सम्राट !..." स्थिर दृष्टि से देखा महात्मा यश ने

सम्राट की ओर—"मौर्य सम्राज्य को कुणाल के नयनों की आवश्यकता थी, सो उसने अपने नयनों की आहुति दे दी . अब मौर्य साम्राज्य को कुणाल की आवश्यकता नहीं..."

"मौर्यसाम्राज्य को कुणाल की आवश्यकता न भी हो तो, एक तड़पते हुए पिता को अपने आज्ञाकारी पुत्र की आवश्यकता है, महाप्रभु !..."

सम्राट के नेत्रों में अश्रु छलछला आये।

उसी समय अपनी कुटिया से निकल कर युवराज कुणाल आते दिखाई पड़े। विह्वल-से होकर सम्राट अशोक दौड़ पड़े उस ओर। पास जाकर उन्होंने युवराज को अंकपाश में भर लिया।

"मेरे कुणाल !...मेरे पुत्र !...." रुद्ध गले से बोले वे।

युवराज का शरीर अचल रहा।

"कौन है ?...यह किसका स्वर है ?..."

"मैं हूँ कुणाल !...मैं हूँ..." रो पड़े सम्राट—"मैं हूँ तुम्हारा घातक...तुम्हारा विनाशकर्ता...तुम्हारी नयन-ज्योति का हरण करने वाला...अधम नर-कीट !"

"आप हैं ? सम्राट प्रियदर्शी ?" युवराज स्थिर स्वर में बोले।

"मैं प्रियदर्शी नहीं ..सम्राट नहीं....मैं नीच हूँ—वधिक हूँ, कुणाल ?....प्रिय कुणाल ! मुझे पिता कहकर सम्बोधन करो .. अपने मुख से पिता कहकर पुकारो ? "

सम्राट बच्चों की तरह रो पड़े।

युवराज कुणाल की दशा देखकर उनका हृदय फट पड़ा था।

परन्तु युवराज गम्भीर बने खड़े रहे।

"मैं भिक्षु हूँ, सम्राटदेव ?...." वे बोले—"मोह-बन्धन त्यागकर मैं तथागत देव को शरण में आया हूँ...जो सुख-सन्तोष मुझे यहाँ मिला है, अब कहीं नहीं मिल सकता। ..."

"कुणाल ! . . मुझे पिता कहकर पुकारो..."

"सम्राटदेव को इतना अधीर होना शोभा नहीं देता !"

यही वाक्य एक दिन सम्राट ने आमात्यश्रेष्ठ के प्रति उपयोग किया था।

सुनकर सम्राट का हृदय हाहाकार कर उठा और वे कुणाल के पैरों के पास भूमि पर गिर पड़े।

"कोई है ?" कुणाल ने पुकारा।

तब तक कांचनमाला तथा आमात्यश्रेष्ठ दौड़ पड़े। आमात्यश्रेष्ठ ने सम्राट को सम्भाला। मठ के कई भिक्षु दौड़ पड़े। स्वयं महात्मा यश सम्राट का उपचार करने लगे।

कुणाल के हृदय पर भी महान् आघात पहुँचा था—परन्तु उनका मस्तिष्क संतुलित एवं संयत था।

भिक्षु का धर्म था, सांसारिक मोह-बन्धनों से दूर रहना। कुणाल आकर अपनी कुटिया में बैठ गये। कांचनमाला भी उनके पीछे-पीछे आई। उसने आगे बढ़कर कुणाल के चरण छुए। कुणाल चौंक पड़े, उस आकस्मिक शीतल स्पर्श से।

"यह किसका स्पर्श है ?"

"मैं हूँ देव !...."

"कौन !...देवी कांनमाला ?..." युवराज आश्चर्ययुक्त स्वर में बोले—"तुम भी आई हो ?..."

"हाँ देव...."

"इस शान्तिमय आश्रम में तुम्हारे पदार्पण पर आश्चर्य होता है, देवि !..."

"क्यों युवराज देव ?"

"तुम तो क्रांति की पुजारिनी हो न ?..." कुणाल बोले—"क्या तुम मेरे हृदय में भी क्रांति की सृष्टि करने आई हो, देवि ?"

"देव ने अपनी नयन-ज्योति खो दी है, किसी के हृदय की व्यथा कैसे देख सकेंगे आप ?" कांचन ने कहा।

"मैं अपनी ज्योति लुटाकर भी प्रसन्न हूँ, देवि !...नयनों के रहते शान्ति-पथ पर चलना अत्यन्त कठिन था...."

" मैंने अशान्ति-पथ पर चलकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली है, संगठित क्रान्ति से मैंने प्रबल मौर्य-साम्राज्य को भी हिला दिया...."

"सुना था मैंने...." युवराज बोले—"उस समय मैं कुस्तान में था... एक बार हृदय में आया था कि चलकर तुम्हें क्रांति-पथ से विमुख करूँ परन्तु फिर सोचा कि पथभ्रान्त पथिक एक-न-एक दिन स्वयं उचित मार्ग पर अग्रसर होगा..."

कांचन ने वार्ता की दिशा बदल दी—

"हम लोग देव को ले चलने के लिए उपस्थित हुए हैं..."

"कहां ले चलने का विचार है, मुझे ?"

"राजप्रसाद में..."कांचन बोली।

"यह असम्भव है, देवि !..." युवराज ने कहा—"एक बार जिस मायाजाल से निकल चुका हूँ, उसी में पुनः फँसने की अब इच्छा नहीं रही..."

"हम लोगों के साथ-साथ समस्त प्रजा आप की अनुपस्थिति से अत्यन्त दुःखी है, युवराजदेव !..."

"दुःख और सुख लौकिक हैं, देवि कांचनमाला ! हमें लौकिक वस्तुओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए..."

"देव ने नयन खोकर अपना हृदय पाषाण बना लिया है...." कांचन बोली—"कल पौर-सभा होगी। सभी अपराधियों के अभियोगों पर विचार होगा..."

"विचारक कौन होगा ?"

"स्वयं मैं...कांचन ने कहा—"सम्राटदेव की यही आज्ञा है..."

"तुम यहाँ से पधारो, देवि कांचनमाला !...."कुणाल बोले—"तुम्हारे मुख से हिंसा की गन्ध आ रही है। स्मरण रहे, एक दिन तुम्हें भी इसी शान्ति-मार्ग का अवलम्बन लेना पड़ेगा..."

२६

आज राजनगर पाटलीपुत्र में भयानक नीरवता है। नगरवासी अज्ञात भय से सिहर उठे हैं।

सम्राट ने आज पौर-सभा की घोषणा की है और उस सभा में तिष्यरक्षिता को उसके अपराध के लिए अत्यन्त कठोर दण्ड दिया जानेवाला है।

प्रजा की उत्सुकता उमड़ पड़ी है।

सबके हृदय में यही आकांक्षा है कि प्रजा को न्याय दण्ड देनेवाले सम्राट, देखें अपनी राजमहिषी को किस प्रकार का दण्ड देते हैं ?

इसी उत्सुकता के कारण पौर-सभा में साधारण जनता को असाधारण भीड़ एकत्रित हो गई थी। नगर के गणमान्य नागरिक भी उपस्थित थे।

विशाल प्राङ्गण में पौर-सभा का आयोजन किया गया था। राजकर्मचारी यथोचित स्थानों पर विराजमान थे।

सम्राट के विशेष आमन्त्रण पर संघस्थविर महात्मा यश भी कुणाल के साथ पधारे थे।

राजसिंहासन पर सम्राट अशोकवर्धन विराजमान थे।

कांचनमाला सम्राट के पार्श्व में, एक छोटे से स्वर्णासन पर आसीन थीं।

आमात्यश्रेष्ठ अभियोग उपस्थित करने के लिए प्रमाणों-सहित एकदम तैयार थे। महाबलाधिकृत आगत सज्जनों का प्रबन्ध कर रहे थे।

राजसिंहासन के ठीक सामने, सभी अभियुक्त सशस्त्र सैनिकों के घेरे में खड़े थे।

तिष्यरक्षिता, तक्षशिलाधीश, रुद्रसेन तथा अन्य कर्मचारी जो इस षडयन्त्र में सम्मिलित थे, लज्जा से सर झुकाये हुए थे।

तिष्यरक्षिता की मुखाकृति श्री-हीन हो गई थी—शरीर विवर्ण हो गया था–आभूषणहीन थी वह। अब वह एक उपेक्षित बन्दिनी मात्र थी।

पौर-सभा के प्रत्येक व्यक्ति की आँखें, तिष्यरक्षिता पर केन्द्रित थी।

तिष्यरक्षिता !

जो एक दिन मौर्यमुकुट की जाज्वल्यमन तारिका थी—

जिसके सौंदर्य ने मौर्य-साम्राज्य के कर्णधार को आहत कर दिया था—वही तिष्यरक्षिता—आज बन्दिनी बन कर प्रजा के समक्ष उपस्थित थी। जा उत्सुकता से सम्राट के न्याय की प्रतिक्षा कर रही थी। जब पौर-सभा में चतुर्दिग नीरवता व्याप्त हो गई तो सम्राट सिंहासन छोड़ कर खड़े हुए।

प्रजा के उत्सुक कर्णद्वय सम्राट के वाक्यों की प्रतिक्षा करने लगे।

"प्रिय प्रजाजनों !" सम्राट गम्भीर स्वर में कहने लगे—"आज पौर-सभा का आयोजन, कुछ अपराधियों के गुरुतर अपराधों पर विचार करने तथा उन्हें दण्ड देने के लिए आयोजित हुआ है। अपराधी गण आपके समक्ष खड़े हैं....आपने उन्हें अब तक देख लिया होगा..."

".............."

सबकी दृष्टि पुनः अपराधियों पर जा पड़ी।

"इन अपराधियों में एक राजमहिषी हैं...प्रजा के समक्ष इस वृद्धावस्था में विवाह करके मैंने जो अमानवीय उदाहरण उपस्थित किया उसके लिए मैं अत्यन्त लज्जित हूँ...मैं अपनी उदार प्रजा से नतमस्तक होकर क्षमा की भिक्षा मागता हूँ..."

"......."

"प्रजा ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखा कि साम्राज्य का शक्तिशाली राजमुकुट उनके सामने नत है।

"सम्राटदेव की जय !..." प्रजा हर्षनाद कर उठी।

सम्राट ने अपना नत मस्तक ऊपर उठाया।

"उसी विवाह के कारण मौर्यकुल के उदयीमान युवराज को असहनीय यातना सहन करनी पड़ी। अभियोग का पूर्ण विवरण आमात्यश्रेष्ठ आपके समक्ष उपस्थित करेगें..."

"......"

प्रजा की दृष्टि महात्मा यश के पास आसीन नेत्रहीन युवराज कुणाल पर पड़ी। सभी के नेत्रों में करुणा उमड़ पड़ी।

"अपराधियों ने महान् अपराध किया है, इसमें संदेह नहीं...." सम्राट कहने लगे—"और इनके कार्य से युवराज्ञी कांचनमाला को महान् कष्ट पहुँचा है, अतः इन्हें दण्ड देने का अधिकार युवराज्ञी को ही है...."

"......"

महात्मा यश के पार्श्व में बैठे हुए युवराज कुणाल चौंक पड़े। तो क्या क्रान्ति की पुजारिणी कांचनमाला ही तिष्यरक्षिता का न्याय करेगी ?

"मैं अपनी ओर से युवराज्ञी कांचनमाला को न्यायाधीश नियुक्त करता हूँ..." सम्राट बोले—"युवराज्ञी से निवेदन है कि वे राजसिंहासन पर पधारें..."

कांचन उठी—

और मन्थर गति से आकर सिंहासन पर बैठ गई।

सम्राट कांचन के रिक्त स्वर्णासन पर जा बैठे।

"यह क्या हो रहा है, महाप्रभु ?..." कुणाल ने कुछ देख न सकने के कारण महात्मा यश से पूछा।

"देवी कांचनमाला राजसिंहासन पर विराजी हैं, वत्स कुणाल !" महात्मा बोले..."वे ही अपराधियों का न्याय करेगीं..."

"हाहाकारमयी क्रांति से शांति की आशा व्यर्थ है, महात्मन् !... तो क्या माता तिष्यरक्षिता मृत्यु को प्राप्त होगीं ?"

"वत्स कुणाल !..." महात्मा ने कहा—"अपराधियो के लिए दण्ड की व्यवस्था राजनीति के अन्तर्गत है...."

"तब तो राजनीति क्रांति-समर्थक है...सम्राटदेव से तो क्षमा की आशा भी की जा सकती थी, परन्तु कांचन...! कांचन के हृदय में तो हिंसा धधक रही है, वह माता तिष्यरक्षिता का जीवन लेकर ही शांत होगी, महाप्रभु !" कुणाल बोले।

वे हाँफ रहे थे। माता तिष्यरक्षिता के लिए कोई दण्ड वे अपने कानों से नहीं सुनना चाहते थे।

"अभियोग का कार्य प्रारम्भ हो...."

गम्भीर स्वर में कांचन ने आज्ञा दी।

कार्य प्रारम्भ हुआ।

आमात्यश्रेष्ठ ने भिन्न-भिन्न प्रमाण उपस्थित कर अभियुक्तों पर अपराध आरोपित किये। प्रजा ने धड़कते हुए हृदय से अपराधियों के षड़यन्त्र का विवरण सुना। लगभग दो घड़ी तक आमात्यश्रेष्ठ अभियोग-पत्रों को पढ़ते रहे।

"अब न्यायाधीश अपराधियों को दण्डाज्ञा सुनाने की कृपा करें..." अभियोग पत्र समाप्त करते हुए आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

सभी की दृष्टि कांचनमाला के गम्भीर मुख की ओर उठ गई। वह न्याय-व्यवस्था पर विचार कर रही थी। गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात् वह बोली—

"अपराधी तक्षशिलाधीश को, तक्षशिला में ही दण्डाज्ञा सुनाई जा चुकी थी..." वह कहने लगी—"परन्तु यहाँ अन्य अपराध भी प्रमाणित हो जाने के कारण दण्ड में कुछ वृद्धि होनी आवश्यक है..."

प्रजा ने उत्सुक दृष्टि से देखा कांचनमाला की ओर।

"......"

भय से तक्षशिलाधीश का शरीर सिहर उठा।

"महाप्रभु !...." असंयत कुणाल महात्मा यश से बोले—"देवि कांचनमाला तक्षशिलाधीश को कौन-सा दण्ड देने जा रही हैं...."

"सुनो वत्स !" महात्मा ने कहा।

"अपराधी तक्षशिलाधीश के महान अपराधों को दृष्टि में रखते हुए उसे यह दण्ड दिया जाता है ..." उच्च स्वर में कांचन बोली—"कि उसके एक पैर तथा एक हाथ काट दिये जायँ और दोनों नेत्रों तथा कानों में तप्त धातु डाल दी जाय..."

"........"

चौंक पड़े प्रजाजन यह कठोर दण्ड सुनकर।

"......"

युवराज कुणाल ने आवेग से महात्मा का हाथ पकड़ लिया।

कांचनमाला का मुख क्रोध से लाल हो रहा था। पति की दुर्दशा करने वाले को दण्ड देकर वह तृप्ति का अनुभव कर रही थी।

"अपराधी रुद्रसेन का अपराध भी भयंकर है, परन्तु उतना भयंकर नहीं, जितना कि तक्षशिलाधीश का...." कांचन कहने लगी—"अतः उसे केवल यह दण्ड दिया जाता है कि उसके हाथ-पैर के पंजे काट डाले जायँ और नेत्रों की ज्योति नष्ट कर दी जाय..."

कांचन कहते-कहते उत्तेजित हो उठी थी....

आज उसे अवसर मिला था, जब कि वह अपने पति के शत्रुओं को मनचाहा दण्ड दे सकती थी। वह पूर्ण रण-चण्डिका-सी सिंहासन पर आसीन थी।

"यह क्या हो रहा है, महाप्रभु ?" कुणाल बोले। उनका शरीर काँप रहा था।

"धैर्य रखो, वत्स कुणाल !...."

कांचन ने तिष्यरक्षिता की ओर आग्नेय नेत्रों से देखा।

तिष्यरक्षिता कांप उठी।

सम्राट अशोक का हृदय पीड़ित हो उठा, अपनी अंकशायिनी की दुर्दशा देखकर।

"अपराधिनी तिष्यरक्षिता!..." उत्तेजित स्वर में पुकारा कांचन ने।

"......"

तिष्यरक्षिता के नेत्र भूमि के वक्ष पर गड़े रहे। उसे नेत्र उठाने का साहस ही नहीं हो रहा था।

"महाप्रभु!..." भीत स्वर में बोले कुणाल—"क्या देवि कांचनमाला माता तिष्यरक्षिता को सचमुच दण्ड देगी!..."

"हाँ वत्स!..."

"यह नहीं हो सकता, महाप्रभु!—नही हो सकता यह..."

उठ कर खड़े हो गये कुणाल!

"देवि कांचनमाला...." उच्च स्वर में बोले कुणाल—"माता तिष्यरक्षिता अपराधिनी अवश्य हैं, परन्तु उन्होंने अपराध मेरे साथ किया है, मैं उन्हें क्षमा करता हूँ..."

"भिक्षु प्रवर...." कांचन बोली—"तिष्यरक्षिता ने केवल आपके साथ अपराध नहीं किया है...उसने मेरे पति के साथ अपराध किया है—उसने सम्राटदेव के पुत्र के साथ अपराध किया है—उसने मौर्यसाम्राज्य के युवराज के प्रति अपराध किया है—"

"क्षमा ही अपराधों का श्रेष्ठ दण्ड है, देवि!..." कुणाल बोले!

"दण्ड देने की व्यवस्था विधान में है और उसका पालन न करना विधान की उपेक्षा है, राजनीतिक दृष्टि से भी यह कायरता का परिचायक होगा..." कांचन ने कहा—"क्षमा निर्बलता का द्योतक है—वह आप जैसे भिक्षु के लिये ही उचित हो सकता है..."

"तुमने हमारी शांती को हमारी दुर्बलता समझ लिया है,

देवि !..." गम्भीर स्वर में बोले कुणाल।

"शान्ति और क्रांति का मार्ग पृथक-पृथक है, देव !..." कहा कांचनमाला ने—"आपको अपने प्रति किये गये अत्याचारों के लिये क्षोभ भले ही न हो...परन्तु मुझे, अपने पति के प्रति किये गये दुर्व्यवहार के लिए क्षोभ है...सम्राट के हृदय में अपने पुत्र के लिए करुणा है...मौर्य-साम्राज्य के निवासियों के हृदय में अपने युवराज के लिए प्रतिशोधाग्नि की ज्वाला धधक रही है...."

"माता तिष्यरक्षिता को क्षमा करो, देवि !..." बोले कुणाल।

"यह असम्भव है, देव !..." कांचन ने कहा—"अपराधिनी तिष्यरक्षिता को दण्ड दिया जाता है कि उसके दोनों नेत्रों में तप्त शलाकायें डालकर नेत्रों की ज्योति हरण कर ली जाय..."

"देवि कांचनमाला !..." चिल्ला उठे युवराज..."क्षमा करो...."

"......." सम्राट अशोक काँप उठे। उनके हृदय में तिष्यरक्षिता के लिए भी कुछ स्थान शेष था।

"तत्पश्चात् एक वृक्ष से उसे उल्टा लटकाया जाय...." कांचन ने कहा।

"......." सम्राट ने एक दीर्घ श्वांस ली।

"उसके नीचे अग्नि प्रज्वलित की जाय..." रणचण्डी-सी गरज उठी कांचनमाला।

"माता तिष्यरक्षिता को क्षमा करो..." विक्षिप्त-से हो उठे कुणाल।

"तत्पश्चात् उसके दग्ध शरीर पर लवण छिड़का जाय..." कांचन ने कहा।

"उफ् !" सम्राट ने अपना मस्तक पकड़ किया।

"देवी कांचनमाला !—" दयार्द्र स्वर में बोले कुणाल—"माता तिष्यरक्षिता को क्षमा करो...प्रलय की सृष्टि न करो..."

"वत्स कुणाल ! धैर्य धारण करो...." महात्मा यश ने संयत वाणी में कहा।

"यहाँ से चलिये, महाप्रभु ! यह अशान्ति का गढ़ है...." हाँफते हुए बोले कुणाल।

"बैठो वत्स !..." महात्मा ने कहा—"तुम्हारे हृदय में ममत्व अब भी विद्यमान है। तिष्यरक्षिता के दुःख से दुःखी और उसके सुख में सुखी होना तुम्हारा धर्म नहीं..."

"मेरी परीक्षा न लीजिए महाप्रभु !...यहाँ स चलिए ...!"

"अपराधिनी तिष्यरक्षिता के लिए अन्तिम दण्ड यह है—" कांचनमाला उच्च स्वर में बोली—"कि उसे अश्व की पूँछ से बाँधकर नगर भर में घसीटा जाय तबतक, जबतक वह मृत्यु को न प्राप्त हो जाय..."

"......" सम्राट अशोक सिंहासन पर लुढ़क पड़े।

आवेग से वे चेतनाहीन हो गये थे।

"मैं यहाँ नहीं रह सकता...नहीं रह सकता..." कहते हुए पागल से युवराज कुणाल सभा-भवन से भाग खड़े हुए। उन्हें किसी ने नहीं रोका।

"अपराधियों के दण्ड की व्यवस्था शीघ्र की जाय..." कांचन ने आज्ञा दी—"मैं स्वयं अपराधिनी तिष्यरक्षिता को अपने अश्व की पूँछ से बाँधकर नगर में भ्रमण करूँगी...."

पौर-सभा विसर्जित हुई। अपराधियों के अपने-अपने अपराधों का दण्ड मिला। कांचनमाला ने तिष्यरक्षिता के अधमरे शरीर को राज-पथ पर घसीट-घसीट कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

१६

सम्राट अशोक को इधर बहुत से मानसिक आघात सहन करने पड़े थे। युवराज कुणाल की दुर्दशा देखकर उनका हृदय चीत्कार कर उठा था—और तिष्यरक्षिता के न रहने पर जीवन की सारी सरसता लुप्त हो चुकी थी। अब सम्राट के लिए संसार में कोई आकर्षण न था। कभी-कभी कांचन तथा सम्प्रति से बातें कर, वे अपना जी बहलाया करते थे।

कुणाल अब तक बौद्ध मठ में थे।

सम्राट, कांचन, आमात्यश्रेष्ठ आदि ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु युवराज पुनः राज-प्रासाद में आने को तैयार न हुए। सम्राट अशोक ने कुणाल के पैरों पर गिकर, अपने अश्रु कणों से उनकी पग-धूलि पखारी, परन्तु कुणाल पत्थर बने रहे।

यह दुःख असह्य था सम्राट के लिए। यह पीड़ा महान थी।

सम्राट अशोक इसे सहन न कर सके।

मानसिक आघात से धीरे-धीरे उनका शरीर शिथिल होने लगा।

एक ही मास में सम्राट का शरीर जर्जर हो गया। वे अपने प्रकोष्ठ में दिन-रात बैठे आँसू बहाया करते। साम्राज्य से उन्हें कोई प्रयोजन न था। वे धीरे-धीरे मृत्यु-पथ की ओर अग्रसर हो रहे थे। मृत्यु की छाया उनके नेत्रों में स्पष्ट दीख पड़ने लगी थी।

कांचन अत्यन्त चिन्तित थी। सम्राट की रुग्णावस्था दिन-पर-दिन वृद्धि पाती जा रही थी।

अन्त में कांचन ने एक दिन भिक्षु कुणाल के पास जाने का संकल्प किया।

कुणाल अपनी कुटिया में थे, जब कि मण्डन ने आकर उनसे कहा- "कुणाल ! देवि कांचनमाला आपसे मिलने आई हैं।"

"देवि कांचनमाला मुझसे मिलने आई हैं ?---क्यों ? क्यों ?..." आश्चर्यचकित हो उठे युवराज—"उनसे जाकर कह दो कि उनके हृदय में हिंसक-प्रवृत्ति विद्यमान है...मैं उनसे नहीं मिल सकता..."

मण्डन ने जाकर कांचन से युवराज की बातें कहीं तो कांचन को बड़ी ग्लानि हुई।

वह पति के कक्ष में जाकर कुणाल के पैरों पर लोट गयी।

"देव !...सम्राटदेव के प्राण आपके विछोह मे तड़प रहे हैं..." वह बोली।

"देवि कांचनमाला !...." वे गम्भीर वाणी में बोले—"मेरी परीक्षा न लो मेरे सामने अब पिता-पुत्र के सम्बन्ध का प्रश्न उपस्थित न करो...मैं अबतक साहस संवरण नहीं कर सका हूँ... इतनी कठिन परीक्षा में से उत्तीर्ण न हो सकूँगा...."

"एक बार चलकर सम्राटदेव को समझाने की कृपा करें, देव !..." सिसकती हुई बोली कांचन--"वे आपके विछोह में अपने प्राण त्याग देंगे..."

"मैं नहीं जा सकता, देवि !..." कठोर-स्वर में कुणाल ने कहा- "तुम जाओ ..अब भी तुम्हारे मुख से मुझे हिंसा की गन्ध आ रही है ...तुम अपने रुदन द्वारा, करुण स्वर द्वारा, मेरे हृदय की शान्ति को क्रांति में परिवर्तित करना चाहती हो—"

"देव !..."

"जाओ देवि !..." चिल्ला पड़े युवराज आवेश से---"जब तक तुम स्वयं भी महात्मा यश की शरण में आओगी तब तक मैं तुमसे सम्पर्क स्थापित नहीं करूँगा..."

"सम्राट मृत्यु के समीप हैं, देव !...वे आपको देखना चाहते हैं..."

"देवि कांचनमाला !..." कठोर स्वर था कुणाल का––"जन्म ही बन्धन है और मरण ही मुक्ति तुम सम्राट से जाकर कहना कि संसार का मोह तुच्छ है। कायर ही इस बन्धन में बँधते हैं..."

कांचनमाला उठ खड़ी हुई। यह तिरस्कार उसके लिए असह्य था। सम्राट अशोक बेचैनी के साथ करवट बदल रहे थे।

कांचन अपना उदास मुख लिये आ खड़ी हुई।

"आया वह बेटी ?...." सम्राट ने शिथिल वांणी में पूछा–– "कुणाल आया ? मेरा लाल आया ?...."

"नहीं सम्राटदेव।..." रो पड़ीं कांचनमाला।

"नहीं आया ?...वह नहीं आया ?...क्या कहा उसने बेटी ?"

"कहा कि जन्म ही बन्धन है और मरण ही मुक्ति ."

"यह कहा उसने ?...." चौंककर बोले सम्राट। उनकी आँखों से आँसू बह चले––"उसने ऐसा कहा ?....वह चाहता है कि मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ ?.. वह चाहता है कि मैं घुल-घुलकर अपने प्राण दे दूँ ?"

"आप अधिक न बोलिये, देव !...भिषग्शिरोमणि का यह आदेश है..." कांचन ने कहा––

"अब जीवन की आशा नहीं रही, कांचन ! जब कुणाल ही नहीं तो मैं जीकर ही क्या करूँगा..."

"अधीर न हों, पिताजी...."

"पश्चात्ताप की अग्नि मेरा हृदय जला रही हैं, बेटी ! कुणाल मेरे ही कारण भिक्षु बना और मेरे ही कारण मुझे भूल गया..."

अधिक बोलने के कारण सम्राट अर्द्ध-चैतन्य से हो गये।

चार दिन बाद सम्राट की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई।

कांचनमाला और आमात्यश्रेष्ठ घबड़ा उठे।

सम्राट कुमार दशरथ को सम्राट की रुग्णावस्था का सन्देश भेज

दिया गया। समाचार पाते ही वे उज्जयिनी से आ गये।

भिषग्शिरोमणि की औषधि तथा राज्य कर्मचारियों की अनवरत सेवा भी सम्राट को स्वस्थता प्रदान नहीं कर सकी।

दूसरे दिन सम्राट की दशा कुछ सुधरी हुई दृष्टिगोचर हुई। क्षीण मुखाकृति पर हल्की-सी आभा झलक उठी। दीप निर्वाण के समीप था।

क्षीण स्वर में सम्राट ने पूछा—

"कुणाल आया ?"

"... ...."

सबने मस्तक नीचा कर लिया।

"नहीं आया वह...अच्छा तो मैं हृदय में उसके आगमन की प्रतीक्षा लिये चल रहा हूँ..."

सम्राट का स्वर टूटता गया। हृदय-स्पन्दन क्षीण होता गया। नेत्रों की पुतलियाँ निर्जीव होने लगीं—

युग-युग से चलता हुआ पथिक, विश्राम लेने की तैयारी करने लगा।

युवराज दशरथ, कांचन, आमात्यश्रेष्ठ आदि अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़े हुए मौर्यसाम्राज्य का सूर्यास्त होना देख रहे थे।

तभी द्वार पर कुछ शब्द हुआ।

सबने देखा—मण्डन के साथ कुणाल आ गये थे।

मण्डन ने कुणाल का हाथ पकड़कर सम्राट की शैय्या के पास खड़ा कर दिया।

एक क्षण तक कुणाल चुपचाप खड़े रहे।

लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि मोहमाया-त्यागी उस भिक्षु के नेत्रों से अश्रु-रेखाएँ बहकर, कपोलों पर विचरण करती हुई भूमि पर गिर पड़ी हैं।

लेकिन उनका शरीर निश्चल है।

"सम्राटदेव !" स्थिर वाणी में पुकारा कुणाल ने।

"हम लोग देर से पहुँचे...." मण्डन ने हताश वाणी में कहा।

पत्थर जैसे निर्जीव खड़े रहे कुणाल !

कपोल पर अश्रु की रेखायें थीं।

त्यागी भिक्षु एक क्षण के लिए सांसारिक बन्धनों के निकट आ गया था।

"मण्डन !..."पुकारा कुणाल ने।

मण्डन ने कुणाल के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"मेरा हाथ उठाकर सम्राटदेव के मस्तक पर रख दो, मण्डन ?..." कुणाल बोले !

मण्डन ने कुणाल का हाथ पकड़कर सम्राट अशोक के मस्तक पर रख दिया।

धीरे-धीरे कुणाल उस उन्नत ललाट पर हाथ फेरने लगे।

उस स्पर्श से विद्युत-शक्ति का-सा संचार हुआ सम्राट के शरीर में।

उनका अचैतन्य शरीर एक बार काँपा और तब शिथिल होता-होता एकदम निश्चेष्ट हो गया।

पिंजड़े में तड़पता हुआ पंछी, वायु का वेग पाकर उड़ चला।

दीपक की लौ बुझ गई। पथिक ने थक कर विश्राम ले लिया।

मण्डन ने कुणाल का हाथ, मृत सम्राट के मस्तक से हटा लिया।*

"सब समाप्त हो गया, कुणाल !" बोला वह।

"चलो मण्डन !—अब चलें..." दूसरे ही क्षण कुणाल ने अपने को संयत कर लिया।

---

* सम्राट अशोक मृत्यु २३३ ई० पू० के लगभग हुई थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् दशरथ सिंहासनरूढ़ हुए थे।

मण्डन कुणाल का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ा।

सम्राट कुमार दशरथ कुणाल के समक्ष आ खड़े हुए!

"आप जा रहे हैं, मातृवर!...." वे बोले—"सम्राटदेव अब नहीं रहे...अब आप ही मेरे पिता हैं...मेरे लिए क्या आज्ञा है..."

"तुम मौर्य साम्राज्य के सम्राट हो, दशरथ!..." कुणाल बोले—"दया धर्म को प्रश्रय देकर प्रजा का पालन करना. और सम्प्रति को अपना ही पुत्र समझना...."

कुणाल ने दशरथ के सरपर अपना हाथ फेरा।

दशरथ ने कुणाल के पैरों पर सिर झुका दिया।

"देवि कांचनमाला !...."

कुणाल आगे बढ़ चले, मण्डन का हाथ पकड़े हुए।

द्वार के समीप पहुँचे ही थे कि कांचनमाला आकर उसके चरणों पर गिर पड़ी और आर्तनद कर उठी।

"मुझे क्षमा करो ..क्षमा करो देव!" विलाप करती हुई बोली कांचन।

झुककर उठाया कुणाल ने, कांचनमाला को।

"मुझे क्षमा करो, देव!..."

"तुम चाहती क्या हो, देवि?" कुणाल ने पूछा।

"मेरी आत्मा अपने न्याय पर अब पश्चात्ताप कर रही है—मैं बहुत संतप्त हूँ....शान्ति की विजय हुई देव!... क्रान्ति को पराजित होना पड़ा...." कांचन ने कहा—"देव! मुझे अपने चरणों में स्थान दें...."

"मैं प्रस्तुत हूँ, देवि! कुणाल ने कांचन का हाथ पकड़ लिया—"आओ चलो...हम तुम शान्ति मार्ग पर अग्रसर होकर संसार के

समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित करें..."

"देव की आज्ञा शिरोधार्य है..." कांचन ने कहा।

कुणाल और कांचन एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए चल पड़े—शान्ति के विशाल पथ पर !"

* इत्यलम् *


स्व० कुशवाहा 'कान्त'

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार

स्व० कुशवाहा 'कान्त' का नाम आज से ३० वर्ष पूर्व हिन्दी उपन्यास जगत में उदित हुआ था। उस समय उनकी सरस-सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल सी मचा दी थी। उनके उपन्यासों की संख्या सन् १९५२ तक मात्र ३५ ही थी। इन पैंतीसों उपन्यासों के प्रकाशित होते-होते वे अत्यधिक लोकप्रिय लेखक माने जाने लगे थे। उनकी अपूर्व लोकप्रियता, उनके निधन के २२ वर्षों के बाद भी रंच मात्र कम नहीं हुई है। इसका ज्वलंत प्रमाण है कि कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा उनके नाम से जाली और नकली उपन्यासों का प्रकाशन कर उनके प्रेमी पाठकों तथा पुस्तक विक्रेताओं को ठगा जा रहा है।

अतः स्व० कुशवाहा 'कांत' के प्रेमी पाठकों से नम्र निवेदन है कि आप इस प्रकार की जाली और नकली पुस्तकें खरीदने से बचें। उनकी लिखी केवल ३५ ही पुस्तकें है, जिसकी सम्पूर्ण सूची प्रस्तुत पुस्तक के अन्दर के पृष्ठ पर अंकित है।

महान उपन्यासकार स्व० कुशवाहा 'कान्त' की सभी पुस्तकें पाकेट बुक्स आकार में अप्राप्य थीं। उनके प्रेमी पाठकों के निरंतर अनुरोध पर उनकी लोकप्रिय कृतियां जो अबतक पाकेट बुक्स आकार में नहीं प्रकाशित हुई थीं, अब सुरुचिपूर्ण-आकर्षक पाकेट बुक्स आकार में सरस्वती पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित कर उनके सभी प्रेमी पाठकों तक पहुँचाई जा रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्ही लोकप्रिय उपन्यासों में से एक है जो आपके समक्ष प्रस्तुत है।



सरस्वती पाकेट बुक्स